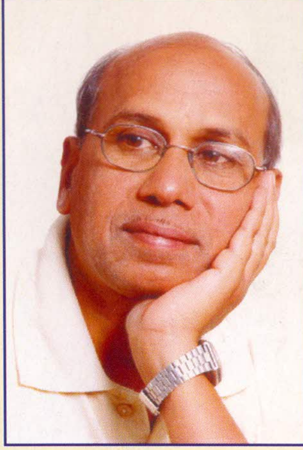


एन. आर. श्याम

इस पुस्तक में से :

एक मुसलमान युवक को पुल पर नारियल फोड़ते देख मुझे बहुत आशचर्य हुआ । मेरे पूछने पर कंडक्टर ने बताया कि उसकी जनाना पेट से है और पहली बार नदी पार कर रही है इसलिए उसने नारियल फोड़ा है ....

(1 यात्रा : यहाँ आदमी को जिन्दा दफनाया जाता है)

यहाँ पर मनौती के रूप में देवी माँ के नाम पर अपने वजन के बराबर सोना भेंट करने की प्रथा है । प्रायः लोग अपने बच्चो के वजन के बराबर सोना भेंट करने की मनौती मांगते है ....

(2 यात्रा : सम्मक्का सारक्का के बलिदान की कहानी कहती पुण्य भूमि की)

कुछ जगह पर तो नाचनेवालियों नें ही प्रतिवाद किया है । वे कहती हैं कि अगर वे ऐसा नहीं करेंगी तो कौन उन्हें नचवाने के लिये ले जायेगा ? अगर नहीं ले जाते तो उनका पेट कैसे भरेंगा ? अपने बच्चों का पेट कैसे भर पायेंगी ? यह है गरीबी का नंगा नाच ....

(3 यात्रा - क्या वहाँ वधस्थल पर मंदिर का निर्माण हुआ है?)

दरार

(यात्रा वृत्तांत एक ऐसे प्रदेश की जो दरार के कगार पर है)

एन. आर. श्याम

दरार

(यात्रा–वृत्तांत : एक ऐसे प्रदेश का जो दरार की कगार पर है)

एन.आर. श्याम

आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी के आर्थिक अनुदान से प्रकाशित

परमेश्वरी पब्लिकेशन

मंचेरियाल

प्रकाशक :

परमेश्वरी प्रकाशन

D/4/A, M.C.C.

मंचेरियाल

जिला. आदिलाबाद

(आ.प्र) 504209

प्रथम संस्करण : 2011

मूल्य : 25/-

लेज़र टाइप सेटिंग

राज कमल प्रेस

जुमेरात बाजार, हैदराबाद

DARAR

(Yatra Vritant)

By

N.R. Shyam

समर्पित

अमरावती में वध होने वाले अनामक
गिरिजनों को जिनका जिक्र 'गुंटुर-अमरावती'
यात्रा-वृत्तांत में आया है।

अनुक्रम

मेरी बात–

प्रांतों में भौगोलिक तौर पर दरार जरूर पड़ जाये पर लोगों के रिश्तों में तड़क न आये...

कहावत है–कोस–कोस पर बोली बदले। पर केवल बोली ही नहीं बदलती है रहन–सहन बदलता है, खान–पान बदलता है, रस्म–रिवाज बदलता है, आचार–व्यवहार बदलता है। जैसे–जैसे दूरी बढ़ती जाती है वैसे–वैसे यह बदलाव कहीं ज्यादा होता चला जाता है।

राहूल सांकृत्यायन की तरह मैं कोई घुमक्कड़ी स्वभाव का नहीं हूं और न ही मुझमें उतना सामर्थ्य है। पर इतर प्रदेश के लोगों की भाषा, रहन–सहन, खान–पान, संस्कृति को जानने की उत्सुकता हमेशा ही रही है। जब भी मौका मिलता है निकल पड़ता हूं दार्शनिक स्थलों का चक्कर काटने। पर दार्शनिक स्थलों से कहीं ज्यादा ध्यान वहाँ के लोगों के बारे में जानकारी हासिल करने का रहता है। कहीं दिमाग में एक बेचैनी। यह बेचैनी ही मुझे घूमने के लिये बाध्य करती है। इस बेचैनी ने ही मुझे लेखक बनाया है।

अपनी यात्रा में जो कुछ भी देखता हूं, जो कुछ भी महसूस करता हूं वह वृतांत का रूप ले लेता है। अगर वह न लिखूं तो अंदर–ही–अंदर घुमड़ता सा रहता है। इसी का परिणाम है इस पुस्तक में संग्रहित तीन यात्रा वृतांत। और ये तीनों यात्रा वृतांत उस प्रदेश के हैं जिनमें एक दरार सी पड़ गयी है। वह प्रदेश है आंध्र प्रदेश।

आंध्र प्रदेश तीन प्रांतों को मिलाकर बना है, तेलंगाना, आंध्रा और रॉयलसीमा। स्वतंत्रता प्राप्ति तक रॉयल सीमा और आंध्रा, अंग्रेजों के अधीन थे और तेलंगाना निजाम के। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद भाषाई आधार पर तीनों को मिलाकर आंध्र प्रदेश बनाया गया। इसे मिलाने के लिये पोट्टी श्रीरामुलु ने भूख–हड़ताल करते हुए अपना प्राण त्याग दिया था। फलस्वरूप 1 नवम्बर 1956 में आंध्र प्रदेश काअवतरण हुआ।

पर धीरे-धीरे इन तीनों प्रदेशों में वैषमन्यता बढ़ती गयी। 1969 तक आते-आते अलग तेलंगाना की मांग प्रबल रूप से व्यक्त हुई। बीच में यह आग ऊपर से ठंडी पड़ी लगी पर अंदर-ही-अंदर सुलगती रही जो तीन चार साल पहले फिर से भभक उठी और यह भभक अभी तक जारी है। अलग तेलंगाना की मांग को लेकर अनशन, हड़ताल तेलंगाना के सभी तबकों में जारी है। इसके खिलाफ आंध्रा और रॉयलसीमा में भी कौंटर अनशन, हड़ताल चल रहे हैं। तीनों प्रांत एक दूसरे पर आरोप, प्रत्यारोप लगा रहे हैं।

डर इस बात का है कि यह प्रांतों के अलगाव का झगड़ा कहीं लोगों के दिलों में अलगाव न ला दे। तीनों प्रांतों के लोगों के दिलों में एक दूसरे के प्रति नफरत के बीज न बो दे। इनके बीच के रिश्ते कहीं भारत-पाकिस्तान के लोगों के बीच के रिश्ते की तरह न बदल जाये।

तीनों प्रांतों के लोगों की समस्याओं को, जीविका के लिये किये जा रहे उनके संघर्षों को, उनके खान-पान को, उनके तीज-त्यौहारों को, उनके हाव-भावों को, उनके जीवन विधान को, उनकी भाषा-बोली को, उनकी परंपराओं को, उनके संप्रदायों को अपनी यात्रा द्वारा समझने का प्रयत्न मैंने किया है। इसमें रॉयल सीमा और उसके परिसर प्रांतों की यात्रा मैने 2004 में की थी। इसी तरह तेलंगाना के मेड़ारम में भरने वाले सम्मक्का-सारक्का मेले की यात्रा 2009 में और आंध्रा के गुंटुर-अमरावती की यात्रा 2010 में। इसी क्रम से मैंने इन यात्रा-वृतांतों को इस पुस्तक में दिया है।

इन तीनों प्रांतों में भौगोलिक तौर पर चाहे दरार जरूर पड़ जाय, परंतु लोगों के आपसी रिश्तों में, लोगों के आपसी संबंधों में तड़क न पड़े यही कामना है।

इस दिशा में तीनों प्रांतों के लोगों को एक-दूसरे को समझने में यह पुस्तक कुछ सहायक हो सके तो अपने आपको धन्य समझूंगा। इस पुस्तक के लेखन और प्रकाशन के संबंध में सलाह देने के लिये सेंट्रल यूनिवर्सिटी हैदराबाद के सुवास कुमार जी और समीक्षक भगवान दास जोपट जी का विशेष आभारी हूं।

आंध्र प्रदेश हिंदी अकादमी ने पुस्तक के प्रकाशन के लिये वित्तीय सहायता देने

की मंजूरी दी है। इसके लिये इसके अध्यक्ष यार्लागड्डा लक्ष्मीनारायण जी का हृदय से आभारी हूं।

लिखा तो बहुत कुछ हूं पर पुस्तक के रूप में प्रकाशन नहीं के बराबर। इसके पहले 'हिरणी' शीर्षक से एक कहानी संग्रह का प्रकाशन हो चुका है। यह दूसरी पुस्तक है। आप लोगों ने हिरणी को जिस तरह आदर दिया इसे भी वह आदर देंगे ऐसी आशा है।

पुस्तक आपके हाथ में है। प्रतिक्रिया का स्वागत रहेगा।

-एन.आर.श्याम
D/4/A, M.C.C.
मंचेरियाल
जिला. आदिलाबाद (आ.प्र) 504209
मो.9642323484/9030138260
ईमेल : sr_n1234@yahoo.in

1. यहाँ आदमी को जिंदा दफनाया जाता है

(रॉयलसीमा यात्रा–वृत्तांत)

"यहाँ का भूखा आदमी पचास रुपये के लिए भी हत्या कर सकता है।" मुझे याद आते हैं तेलुगु के प्रसिद्ध कहानीकार और समीक्षक के.विश्वनाथ रेड्डी के कहे ये शब्द एक संगोष्ठी में। रायलसीमा के साहित्य पर चर्चा करते हुए उन्होंने ये शब्द कहे थे। सौभाग्य से मुझे ऑफिस के काम से ताड़पत्री जाने का मौका मिला। यह मेरी रॉयलसीमा की पहली यात्रा थी।

रॉयलसीमा, यानी आंध्रप्रदेश के तीन बड़े हिस्सों में एक। तेलंगाना, तटीय आंध्रा और रॉयलसीमा को मिलाकर भाषा की दृष्टि से आंध्र प्रदेश का निर्माण किया गया था।

हैदराबाद के काचीगुड़ा स्टेशन से वेंकटाद्री एक्सप्रेस में सवार हुआ मैं रात के सात बजे के करीब।...अगर सफर छह–सात घंटे का हो तो मैं हमेशा जनरल बोगी में ही बैठना पसंद करता हूँ। जनरल बोगी में तरह–तरह के लोगों से मिलने का मौका मिलता है। लोग यात्रा में आपस में ऐसे घुल–मिल जाते हैं, मानो एक ही परिवार के सदस्य हों। कई तरह की जानकारियाँ उनसे मिलती हैं। मेरा तो मानना है कि अगर किसी क्षेत्र–विशेष के लोगों के बारे में जानकारी हासिल करनी हो, उनकी भाषा सभ्यता, सांस्कृति आदि से परिचित होना हो तो सबसे सरल उपाय है वहाँ के लोकल ट्रेन के जनरल कंपार्टमेंट में यात्रा करना।

वेंकटाद्री एक्सप्रेस का यह जनरल बोगी भी मेरी आशय के अनुकूल ही रहा। जैसे–जैसे ट्रेन आगे बढ़ती गयी, रायलसीमा के लोगों तादाद भी बढ़ती गयी। उनकी बातों से उनके आचरण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि रॉयलसीमा–वासियों की भाषा तेलुगु होने के बावजूद न तो वह तटीय आंध्रा की भाषा है और न ही तेलंगाना की। इन दोनों का मिलाजुला रूप कहा जा सकता है। तटीय आंध्रा की तेलुगु की तरह शब्दों को न तो रबड़ की तरह तानकर कहा जाता है और न ही

तेलंगाना की तरह एकदम संक्षेप में।

किसी भी भाषा पर वहाँ की भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव जरूर पड़ता है। तटीय आंध्रा डेल्टा प्रदेश है। दूसरे प्रदेशों की तुलना में यहाँ श्रम कम और विश्राम का समय (लीजर) ज्यादा रहता है। इसलिए यहाँ की भाषा में भी यह लीजरपन झलकता है। शब्दों को रबड़ की तरह तानकर आराम से कहा जाता है। वहीं तेलंगाना में जहाँ पर जीविका के लिए कठिन श्रम करना पड़ता है, लीजरपन का अभाव है। श्रम करते समय और बाद में भी इतना वक्त नहीं रहता कि अपनी बातों को खींच-तानकर कह सकें। इसलिए सहज की ही यहाँ की भाषा में संकोचन होता है।

रॉयलसीमा की भाषा इन दोनों का मिलाजुला रूप है। कई मामलों में यह यात्रा मेरे लिए महत्वपूर्ण रही।

चौंका देने वाली घटना :-

ट्रेन के आगे बढ़ने के साथ ही यात्रियों की भीड़ भी बढ़ चुकी थी। चार आदमी बैठने वाले बेंच पर करीब सात-सात, आठ-आठ लोग बैठे हुए थे। मेरी बगल में पच्चीस-छब्बीस साल का एक युवक।... औपचारिक परिचय के बाद कुछ खुल चुका था। उसने बताया कि वह एक कंस्ट्रक्शन कंपनी में फिटर के तौर काम करता है। यह कंपनी बंड़ी-बड़ी फैक्ट्री वगैरह बनाने का कंट्रैक्ट लेती है। उसने अपनी आँखों देखी घटना का बयान करते हुए बताया कि ऐसे ही एक कंस्ट्रक्शन में नींव का काम चल रहा था। मोटे-मोटे राडों का ढाँचा। करीब साठ-सत्तर फुट की गहराई। ऊपर से गिट्टियों और सिमेंट मिक्स से बना माल गमेलों से लाकर धड़ाधड़ पटका जा रहा था। हो-हल्ला। शोर गुल। अचानक माल डालते दो मजदूर उसमें गिर गये। मालिक काम का निरीक्षण करते वहीं खड़ा था। उसने उन्हें निकलवाने के बजाय उन पर ही माल डलवा दिया। जिंदा थे, या मरे, यह भी जानने की सुध नहीं ली। किसी को पता तक नहीं चला। जिन दो-चार लोगों ने देखा था उन्होंने भी चूँ तक नहीं की। चुप्पी साध ली। बड़ी कंपनी थी इसलिए दबदबा भी बहुत था। भला कौन दुश्मनी मोल लेता।

वे कौन थे? क्या नाम था? कहाँ से आये थे? इन बातों तक का पता नहीं था किसी को। सैकड़ों मजदूरों में किसी का अता-पता जानने की फुरसत भला किसे रहती !... करीब दो-तीन माह बाद केरल से उनके अभिभावक ढूँढते हुए वहाँ आये। पूछने पर रजिस्टर खोलकर उन्हें बता दिया गया कि वे तो बहुत पहले ही कंट्रैक्ट छोड़कर चले गये हैं। अब कहाँ गये हैं क्या पता?

यह दिल दहला देने वाली घटना का जिक्र था। अपनी सुख-सुविधा के लिए इंसान का इतने घिनौने पन पर उतर आना यह पूंजीवादी व्यवस्था की एक बड़ी विडंबना है। कभी-कभी बड़े-बड़े कंट्रैक्टर जानबूझकर भी ऐसा करते हैं। मूढ़ विश्वासों के तहत मानव बलि देने के उद्देश्य से भी वे ऐसा करते हैं। योजना के मुताबिक वे एक दो ऐसे मजदूरों को चुनते हैं जिनके आगे-पीछे कोई न हो। वे उन्हें ऐसी जगह काम पर रखते हैं जहाँ पर आसानी से इन्हें धकेला जा सके। बस मौका देखते ही चुपचाप धकेल देते हैं और ऊपर से माल डालकर पटवा देते हैं।

हल्दी बोने का सही तरीका –

मेरे सामने रायलसीमा का ही एक किसान बैठा हुआ था।... उसने बताया कि उसने खेत में हल्दी की फसल डाली है। एक फसल में करीब साठ-सत्तर हजार रुपये कमा लेता है।

हमारे घर के पिछवाड़े में भी छोटी-सी बागवानी है। सब्जी के अलावा थोड़ी-सी जगह में हल्दी भी लगाते हैं। दस-बारह साल पहले थोड़ी-सी कच्ची हल्दी की गाँठे मुझे कहीं मिल गयी थीं। मैंने माँ को लाकर दे दिया था। माँ को भी बागवानी में बहुत दिलचस्पी है। उसने उसे जमीन में लगा दिया था। उससे हर साल हमारे घर के लिए इतनी हल्दी तो निकल आती है कि बाहर खरीदना न पड़े। परंतु उसकी गाँठें इतनी मोटी नहीं होती जितनी बाहर बाजार में मिलती हैं। इसलिए हल्दी की खेती के बारे में जानने की मुझमें बहुत ही उत्सुकता हुई।

पूछने पर उसने बताया कि जब फसल तैयार हो जाती है और हल्दी की खुदाई चलने लगती है तो बीज के लिए कुछ हल्दी जमीन में वैसे ही छोड़ देते हैं।

सीजन आने पर वे फिर से प्रस्फुटित होती हैं। तब उन्हें खोदकर निकालते हैं और छाँव में फैला देते हैं ऊपर से घास वगैर ढँक देते हैं। बीस-पच्चीस दिन के बाद फिर उनकी रोपाई की जाती है। इससे हल्दी-की बड़ी-बड़ी डल्लियाँ मिलती हैं।

मुझे सचमुच बहुत-ही अजीब लगा हल्दी की खेती का यह तरीका।

शेष दुनिया से कटा पेन्ना सिमेंट्स –

रात के करीब ढ़ाई बजे ताड़पत्री स्टेशन पर उतारा और वहाँ से जीप में पेन्ना सिमेंट कंपनी।

रॉयलसीमा का बहुत सारा भाग पहाड़ों से घिरा हुआ है। इन पहाड़ों पर चूने के पत्थरों (लाइम स्टोन) के डिपाजिट प्रचूर मात्रा में हैं। इसलिए यहाँ के प्रमुख उद्योगों में सिमेंट उद्योग भी है। यहाँ पर बहुत सारी सिमेंट कंपनियाँ हैं।

पेन्ना सिमेंट, ताड़पत्री गाँव से करीब दस-बारह किलोमीटर की दूरी पर पहाड़ी पर है। एकदम रिमोट में। वहाँ जाने पर ऐसा लगता है मानो शेष दुनिया से कट गये हैं। ऊँची-ऊँची प्रहरी दीवरों से घिरी फैक्टरी और कॉलोनी। कुल मिलाकर साठ-सत्तर क्वार्टर होंगे। अगल-बगल न ता कोई होटल-वोटल, न ठेले-वेले और न ही कोई जन-जीवन। मुझे इसे देखकर 'कागा जैसे जहाज का' वाली कबीर की पंक्तियाँ याद आ गयीं।

कॉलोनी और फैक्टरी बिलकुल एक-दूसरे से सटे हुए। ड्यूटी के बाद अपने-अपने क्वार्टरों में लौटने के बाद भी कामगारों को ऐसा लगता है मानो वे फैक्टरी में ही हैं। सारा-का-सारा फैक्टरी कॉलोनी से दिखाई देता है। एक क्वार्टर में छोटा-सा कोऑपरेटिव स्टोर। जरूरत का सामान वहीं से खरीदा जाता है, या फिर ताड़पत्री गाँव जाना पड़ता है। वहाँ से राज्य परिवाहन की बस हर दो-तीन घंटे में चलती है।

पुट्टपर्ती की यात्रा –

वैसे मुझे साईबाबा में कोई दिलचस्पी नहीं है और न ही मैं उन्हें भगवान

मानता हूँ, परंतु वहाँ का नजारा एक बार देखना चाहता था। निकल पड़ा। ताड़पत्री से अनंतपुर और वहाँ से धरमावरम होते हुए पुट्टापर्ती।

पुट्टपर्ती में साईबाबा का 'किंगडम' (राज्य) देखकर ही आँखें चौंधिया गयीं। और फिर 'शांति निलयम'... यह तो बड़े-बड़ राजा-महाराजाओं के राजभवनों को भी मात दे रहा था।

सारे विदेशी एक जगह –

साईबाबा के दर्शनार्थ आये विदेशियों के ठहरने के लिए विशालकाय सुविधाओं से भरी अट्टालिकाएँ। अलग-अलग देशों से आये अलग-अलग दर्शनार्थियों के लिए अलग-अलग भवन समुदाय। अगर विभिन्न देशों के लोगों को एक ही जगह पर देखना हो तो दोपहर बारह-एक बजे के करीब शांति निलयम के पास इन भवन समुदायों के रास्ते पर खड़े हो जाइए। चीन, ऑस्ट्रेलिया, जापान, कोरिया, वेनुजुवेल, जर्मनी, हॉलैंड, पोलैंड, सभी जगह के लोग अपने-अपने रंग बिरंगे पोशाकों में आपको दिखलाई देंगे। किस देश के हैं कहकर आपको किसी से पूछने की जरूरत नहीं पड़ेगी। अपने-अपने देश के नाम वाले स्कार्फ छाती पर लटकाये मिलेंगे।... विदेशियों को एक विशेष किट बैग दिया जाता है, जिसमें उनकी काम की चीजें जैसे नैपकिन, डायरी, साईबाबा से संबंधित उनकी अपनी भाषा में आध्यात्मिक पुस्तकें आदि रहती हैं। ये इसे कमर पर बांध लेते हैं। बैठते वक्त यह बीच में से कुर्सी की तरह मुड़ जाती है और कमर को सहारा देती है। इसलिए विदेशियों को साईबाबा के दर्शनार्थ नीचे बैठने में कुछ विशेष असुविधा नहीं होती है।

विचित्र संयोग –

मैं वहाँ खड़ा इन विदेशियों का नजारा देख रहा था कि मेरे पास सफेद कमीज और पैजामा पहने अधेड़ उम्र का आदमी आया और बोला-- 'एक अप्लीकेशन लिखवाना है।'

मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मैं जहाँ सर्विस करता हूँ वहाँ पर जिस किसी भी अशिक्षित कामगार को अप्लीकेशन लिखवाना होता है प्रायः मेरे पास चला आता है, क्योंकि मैं किसी को मना नहीं करता हूँ। अपना सब काम छोड़कर पूरी सहृदयता से उनका यह काम कर देता हूँ। इसलिए जब उस आदमी ने मुझे अप्लीकेशन लिखना है कहकर कहा तो मुझे लगा कि कहीं मैं मंचेरियाल में तो नहीं हूँ। फिर दूसरा आश्चर्य कि इस आदमी को कैसे पता चला कि मैं अप्लीकेशन लिखता हूं। खैर- अप्लीकेशन ने पुट्टपर्ती के इस शांति निलयम में भी मेरा पीछा नहीं छोड़ा।

जैसा कि उसने बताया, उसका नाम कृष्ण रेड्डी था और वह आंध्रप्रदेश के ही नलगोंडा जिले का रहने वाला था। अब कितना सही है कितना झूठ, उसने बताया कि उसका बहुत जमीन-जायदाद था जिसे नक्सलाइटों ने लूट लिया और जमीन पर कब्जा कर लिया। अब वह और उसके परिवार वाले निराश्रित हो गये हैं। उसके बताये मुताबिक मैंने साईंबाबा से आर्थिक सहायता की याचना करते हुए आवेदन लिखकर दिया।

शांति निलयम में ब्लेड, छूरी और किसी भी तरह का औजार ले जाना मना है। सभागृह में तो ब्लेड, छूरी, और अन्य औज़ारों के साथ-साथ कैमरा, कैलकुलेटर तक ले जाना निषिद्ध है। मेटल डिटेक्टर भी लगे हुए हैं। पर जरूरत पड़ने पर ही इनका उपयोग किया जाता है। इन्हें देखकर लगा कि अपने-आपको भगवान कहलाने वाला भी कितना असुरक्षित है।.... उसकी खुद की सुरक्षा के लिए इतना कड़ा प्रबंध है तो यह सारी दुनिया में फैले अपने हजारों-लाखों भक्तों की रक्षा किस तरह कर पाता होगा? मेरे हाथ में पत्रिका देख एक वालंटियर ने आँखें तरेरते हुए छीनकर एक तरफ पटक दिया। कुछ औजार वगैरह तो नहीं है कह सारे बदन में टटोलकर देखने के बाद अंदर जाने दिया।...मेरे पर्स में एक ब्लेड था और रेडियम शीट काटने वाली तेज छूरी भी। पर इसका पता न तो वालियंटरों को ही चला और न भगवान ही जान पाए। अब इसे क्या कहा जाए।

खैर जाकर सब दर्शनार्थियों के साथ मैं भी बैठ गया। बहुत इंतजार के बाद

मधुर स्वर में संगीत का बजना आरंभ हुआ और इसके साथ ही साईंबाबा का प्रवेश अपने अंतःपुर से। वे स्त्रियों की तरफ गये। जोरदार तालियों की गड़गड़ाहट। बहुत धीरे-धीरे चल रहे थे। शायद उम्र का तकाजा था। औरतों की तरफ पूरा नहीं घूमें, थोड़ी दूर जाकर ही वापस लौट आये। हमने सोचा अब हमारी तरफ आएंगे। उत्सुकता से इंतजार करने लगे। थोड़ी देर बाद संगीत बंद हो गया जिसका मतलब था कि अब वे नहीं आएंगे, हम अब जा सकते हैं। भारत ही नहीं, दुनिया के कोने-कोने से आये हजारों दर्शनार्थी।.... पर उन्हें दर्शन नहीं मिला। और कोई प्रोग्राम होता तो लोगों में उत्तेजना, फैल जाती , हलचल मच जाती। पर यह तो भगवान का दरबार था। किसी भी चेहरे पर न कोई उत्तेजना, न हलचल। दर्शन देना या न देना यह तो भगवान की मर्जी है। सब चुपचाप बाहर निकल गये। मैं भी वहाँ से वापस ताड़पत्री आ गया।

एक मुसलमान युवक का नारियल फोड़ना—

ताड़पत्री से पेन्ना सिमेंट कंपनी जाने के लिए बस को पेन्ना नदी पर बने पुल पर से गुजरना पड़ता है। यह नदी पहाड़ी की तराई में है, और पहाड़ी इलाके को ताड़पत्री से अलग करती है। रायलसीमा की यह नदी भी सूखी ही दिखलाई दी। एक बूंद पानी तक नहीं। शायद यह रायलसीमा का प्रतिनिधित्व कर रही थी।

मैं कंडक्टर की बगल में बैठा हुआ था। बस में अन्य यात्रियों के साथ एक नया जोड़ा भी बैठा हुआ था। लड़की बुरका पहने हुई थी पर चेहरा खुला था। बहुत ही सुंदर लग रही थी। लड़का भी कुछ शिक्षित लग रहा था। पैंट शर्ट पहना हुआ था। शायद पहाड़ के ही रहने वाले थे।

जब बस पुल से बीचों-बीच पहुँची तो लड़के ने कंडक्टर की तरफ इशारा किया। कंडक्टर ने ड्रायवर को बस रोकने का संकेत दिया। बस रुक गयी। लड़का झट से बस से उतरा। पुल की दीवार पर नारियल फोड़ा। दोनों टुकड़ों को नदी में डाल दिया और उसी फुर्ती से फिर से बस में आकर बैठ गया। बस फिर से चल पड़ी।

एक मुसलमान युवक को पुल पर नारियल फोड़ते देख मुझे बहुत आश्चर्य हुआ। मेरे पूछने पर कंडक्टर ने बताया कि उसकी जनाना पेट से है और पहली बार नदी पार कर रही है इसलिए उसने नारियल फोड़ा है।

इस घटना ने मुझे आत्मविभोर–सा कर दिया था। मुझे याद आता है मुसलमान दरगाहों में हिंदुओं का उसी श्रद्धा से जाना। उसी उत्साह से मोहर्रम के ताजिया, सवारियों के उत्सवों में, उर्सों में भाग लेना।

यह भारत की प्रमुख दो कौमों का सांस्कृति तौर पर एक–दूसरे से जुड़े रहने का प्रतीक है। यह सहज रूप में आयी सद्भावना का प्रतीक है। दोनों संस्कृतियाँ आपस में दूध और पानी की तरह मिली हुई हैं। यह न तो हिंदू संस्कृति है न ही मुसलमान संस्कृति । पर भारतीय संस्कृति है। पर आज कुछ स्वार्थी तत्व इस सद्भाव को किस तरह तोड़ते चले जा रहे हैं यही बात मन को दुःखी कर देती है।

अहोबिलम की यात्रा —

यह यात्रा भी बहुत ही दिलचस्प रही। ताड़पत्री से बेनगानापल्ली होते हुए आलगड्डा और वहाँ से अहोबिलम। प्रवेश पर ही बड़ा–सा मंदिर नरसिम्हा स्वामी का। मंदिर की बगल से होंता हुआ पहाड़ों का दृश्य देखने चला गया। पहाड़ इतने ऊँचे कि देखने के लिए गर्दन को पीछे नब्बे डिग्री के कोण में मोड़ना पड़ता है। इतने सीधे कि लगता है किसी ने ऊपर से लेकर नीचे तक आरे से खड़ा काट दिया हो। इन्हें देखकर प्रकृति की इस सृष्टि पर आश्चर्य होता है।

यहाँ के बारे में एक किंवदंती प्रसिद्ध है। यह किंवदंती भक्त प्रह्लाद से जुड़ी हुई है। माना जाता है कि प्रह्लाद के पिता हिरण्यकश्यप ने प्रह्लाद को मारने के लिए जिस पहाड़ से नीचे गिरवाया था वह यहाँ की सबसे ऊँची चोटी वाली पहाड़ ही थी। गिरते हुए बालक को भगवान विष्णु ने नीचे अपनी बाहों में ले लिया था। इसी कारण इस क्षेत्र का पौराणिक महत्व है।

पुराणों के अनुसार हिरण्यकश्यप ने कड़ी तपस्या करके भगवान शंकर से

यह वर प्राप्त कर लिया था कि उसे न तो कोई दिन में मार सकता है न रात में, न अंदर मार सकता है न बाहर, न आदमी मार सकता है न जानवर। और न ही कोई हथियार से मार सकता है। इसके बाद उसने अपने आपको ही भगवान घोषित कर दिया था। पर उसका अपना बेटा प्रह्लाद विष्णु का भक्त था। उसे मारने के लिए हिरण्यकश्यप ने तरह–तरह के उपाय किये, पर हर बार भगवान विष्णु ने उसे बचा लिया। अंत में भगवान विष्णु ने नरसिंहाअवतार लेकर उसका वध किया। नरसिम्हा यानी जिसका सर सिंह का और धड़ आदमी का, जो न आदमी था न जानवर। वह खंभे को फाड़कर उसके बीच अवतरित हुआ था जो न अंदर था न बाहर। जिस समय वह अवतरित हुआ वह संध्या बेला थी, न दिन था न रात। उसने हिरण्यकश्यप को पकड़कर जंघों पर लिटाकर बिना किसी औजार के अपनी बड़ी–बड़ी नाखूनों से छाती चीरकर मारा था।

खंभे के बीच अवतरित हुए, हिरण्यकश्यप को पकड़कर संहार करते नरसिम्हा स्वामी का मंदिर ही था यह।...

पहाड़ी की तराई में बंदरों का झुंड। बंदर ही बंदर, एक पेड़ से दूसरे पेड़ पर, एक डाल से दूसरे डाल पर छलाँग लगाते हुए, मादा बंदर अपने बच्चों को पेट से चिपकाये भागते हुए।...बहुत ही मोहक दृश्य था।

लौटते वक्त लकड़ी का ब्रिज पार कर सुस्ताने के लिंए एक पत्थर पर बैठ गया। एक छोटी–सी लड़की एकदम भोली–भाली मेरे पास आयी और बोली– ''अंकल, मैं ब्रिज के पार जाऊँ क्या?'' मेरे पूछने पर अपना नाम उसने 'पूजा' बताया और मम्मी–पप्पा कहाँ है पूछने पर उसने जिनकी तरफ इशारा किया था वह एक युवा दंपति था अभिजात्य वर्ग से। समझ गया अपने अभिजात्यपन के चलते वे जंगल में नहीं जा रहे है और लड़की की सहज जिज्ञासा उसे प्रकृति की सुंदरता देखने से रोक नहीं पा रही है। मैंने लड़की से कहा, ''जाओ बेटी पर ज्यादा दूर नहीं जाना, ब्रिज पार करके बस वहीं खड़े रहना।'' उसे धैर्य–सा आ गया। वह धीरे–धीरे आगे बढ़ गयी। लौटते हुए मैं उस दंपत्ति के पास गया और कहा– ''सुनिए

आपकी पूजा उधर जा रही है।''

मुझे जैसे आगंतुक के मुँह से उनकी बेटी 'पूजा' का नाम सुन उन्हें आश्चर्य हुआ। मैंने कहा, ''आप भी जाइए। कोई खतरा नहीं है। आगे बंदर वगैरह दिखलाई देंगे। लड़की को दिखा दीजिए। खुश हो जाएगी।'' शायद मेरी बात उन्हें जंच गयी। वे भी आगे बढ़ गये।

महानंदी की यात्रा —

वहाँ से वापस आलगड्डा और फिर नंदयाल। नंदयाल का महत्व इसलिए भी है कि भारत के भूतपूर्व राष्ट्रपति नीलम संजीव रेड्डी यहीं से लोकसभा के लिए निर्वाचित होकर आये थे। एमर्जेंसी के तुरंत बाद हुए लोक सभा चुनाव में जहाँ सारे देश में जनता पार्टी की हवा चली थी, वहीं पर आंध्र प्रदेश में केवल एक सीट को छोड़कर सारी-की-सारी सीटें कांग्रेस के हक में गयी थीं। केवल एक सीट ही जनता पार्टी को मिली थी और वह थी नंदयाल संसदीय सीट।.... और जीतने वाले प्रत्याशी थे, नीलम संजीव रेड्डी। इसके तुरंत बाद ही वे भारत के राष्ट्रपति निर्वाचित हुए थे।

नंदयाल से हर दस मिनट पर 'महानंदी' के लिए स्पेशल बसें चल रही थीं। बस स्टैंड के बाहर मेन रोड पर ही नंदयाल डिपो वालों ने शामियाना तानकर 'महानंदी स्पेशन' का बैनर लगा रखा था। वहीं से उनकी बसें चल रहीं थीं। दूसरे डिपो की बसों को वहाँ रुकने नहीं दिया जा रहा था।...राज्य परिवाहन की बसों में यात्रियों के लिए होड़ इस बीच देखने को मिल रही थी।...राज्य परिवाहन निगम को दिवालिया घोषित करते हुए निजी क्षेत्र को सौंपे जाने की सरकारी योजना... कामगारों का सख्त विरोध,... लंबी हड़ताल... सरकार का झुकना पर कुछ शर्तों पर। उन शर्तों के तहत ही ज्यादा से ज्यादा मुनाफा दिखाने की होड़। पहले जहाँ रास्ते में या बीच वाले स्टेजों पर यात्रियों को देखकर खाली बसें भी नहीं रुकती थीं और रुकती थीं तो 60-70 मीटर आगे या पीछे , वहीं पर आज यात्रियों को बुला-बुलाकर बैठाया जा रहा है। हाथ दिखाते ही बसें रोक दी जाती हैं। कोई

यात्री बीच में ही उतरना चाहता हो तो उसे यह सुविधा भी रहती है। राज्य परिवहन निगम के व्यवहार में आया बहुत बड़ा परिवर्तन है यह, अपने अस्तित्व को बनाये रखने के लिए, सरकार से और निजी वाहनों से भी।

हमारी बस दूसरे डिपो की थी। शामियाने के पास नंदयाल बस डिपो के लोगों से उनकी झड़प हो गयी थी यात्रियों को लेकर। जब हम महानंदी पहुँचने को हुए तो ड्रायवर, कंडक्टर से कह रहा था- 'वापसी में एक्सप्रेस का बोर्ड लगाएंगे'' कहकर ताकि कलेक्शन कुछ ज्यादा हो सके।... यानी कि किसी बस को एक्सप्रेस बनाना या आर्डिनरी बनाना ड्रायवर और कंडक्टर के हाथ में हो गया था।

शिवरात्रि के अवसर पर महानंदी में मेला लगता है। न जाने कहाँ-कहाँ से दर्शनार्थी आते हैं।... हजारों की भीड़। महानंदी का मंदिर पानी के एक कुंड पर बना हुआ है। नीचे पानी और ऊपर मंदिर। कुंड का पानी इतना स्वच्छ कि अगर उसमें पैसा डालें तो तल में जाकर भी साफ दिखलाई देता है।

दुनिया की सबसे बड़ी नंदी की प्रतिमा—

मंदिर में पाँवो को मोड़कर बैठे हुए नंदी याने बैल की एक विशालकाय मूर्ति पत्थर को तराशकर बनायी हुई। यह सारे विश्व में सबसे बड़ी नंदी की मूर्ति है। इसलिए ही इसका नाम 'महानंदी' पड़ा है। नंदी के ठीक सामने करीब बारह-चौदह फुट की दूरी पर गर्भ में बृहत् शिवलिंग और उसके ऊपर बूँद-बूँद पानी टपकाता कलश। नंदी की पीठ पर उभरे हुए स्थान पर हाथ की तर्जनी और अंगूठा रखकर बीच में से देखने पर दृष्टि दोनों सींगों के बीच से होती हुई टप्प्-टप्प् पानी की बूँदे टपकाती केवल कलश पर ही पड़ती है। केवल कलश ही दिखलाई देता है। यह वास्तु शास्त्र का अजीब नमूना है।

मैं शिवरात्रि के दूसरे दिन पहुंचा था वहाँ इसलिए मेले की भीड़-भाड़ कुछ कम हो चुकी थी। कम यानी उतनी कम भी नहीं। अलग-अलग जाति वालों के अलग-अलग भोजनों के स्टॉल लगे हुए थे। कहीं रेड्डी मुफ्त भोजन तो कहीं, वैश्य मुफ्त भोजन, कहीं पेरका मुफ्त भोजन तो कहीं जुलाहा मुफ्त भोजन। गन्ने के

रस के स्टॉल, बच्चों के खिलौनों के स्टॉल, मिठाईयों के स्टॉल, फोटो और पोस्टरों के स्टॉल, कहीं जमीन के समानांतर गोल-गोल घूमते झूले तो कहीं शून्य में ऊपर लेजाकर नीचे लाते झूले। कहीं कोई तांत्रिक अपने ताबिजों की दिव्य शक्ति का बखान करते हुए हाथ की नस काट उससे रिसते खून को ताबिजों में लगाकर दे रह था। ... ले-देकर टी.वी. संस्कृति से दूर मुझे अपने बचपन की स्मृति आने लगी थी। इधर-उधर घूमते हुए मेले का आनंद लेता रहा।... एक तरह का अपनापन कायम हो गया था मेले से।

किसानों का मेला —

चूँकि नंदी यानी बैल किसानों के जीवन के अभिन्न अंग हैं इसलिए यह मेला मुख्य रूप से किसानों का मेला ही है। मेले में आने वालें में बड़ी संख्या किसानों की ही होती है। ट्रकों में चढ़ाकर एक से एक बैलों की जोड़ी प्रदर्शनी में लायी जाती है। ट्रैक्टर और प्रोक्लेनरों के जमाने में भी एक से एक हट्टे-कट्टे बैलों को देखना सुखद अनुभव है। बैलों की होड़ लगायी जाती है। एक बड़ा वजनदार आयताकार पत्थर रस्सी से बाँधकर बैलों से खिंचवाया जाता है।... तेजी से लेकर भागने की होड़ में बैलों की पीठ पर सटासट कोड़े बरसने लगते हैं।... मूक जानवरों के साथ इस तरह का बर्ताव अमानुषिक ही लगता है।... हजारों की भीड़।... हो हल्ला।

और जीतने वालों का इनाम क्या है, पता है। सुनकर दांतों तले ऊँगली दबा लेंगे। सीलबंद टाटा सुमो, ट्रैक्टर आदि-आदि। कितने व्यवसायिक हो गये है ये खेल भी। कमोडिटी, पैसा कैसे रोल अदाकर रहे हैं इन खेलों में।

मंदिर के पानी के कुंड में एक औरत सतह पर लाश की तरह पड़ी हुई है। करीब एक घंटा तो हो ही गया था मेरे सामने ही। और कब तक थी पता नहीं। दर्शनार्थी उसे देखते हुए दाँतों तले ऊँगली दबा रहे थे।...

खली बसों की लंबी कतारें। एक-के-बाद-एक स्टेज पर आ रही थीं। स्टेज पर आने के पहले ही खचाखच भर जा रही थी। अंदर बैठने के पहले ही

लोग छत पर चढकर बैठना पसंद कर रहे थे। यह भारतीय किसानों की बिंदास मानसिकता का ही तो प्रतीक है। खुली बैलगाड़ी की तरह बस की खुली छत ही उन्हें ज्यादा पसंद है। बस की छत पर बैठ झूमते हुए गाना गाना, ताली-बजाना, बस के थोड़ा इधर-उधर लुढकते ही हो-हल्ला मौज-मस्ती।...खतरा मोल लेना तो भारतीय किसानों की प्रकृति ही है न? 'बिना खतरे का आखिर मजा ही क्या है'?

वापस नंदयाल आ गया।

गुटों के झगड़े के लिए कुप्रसिद्ध—

ताड़पत्री, अनंतपुर, धरमावरम, गुत्ती, नंदयाल, कड़प्पा, आलगड्डा, प्रोदूटूर ये सब बहुत ही सुने हुए नाम हैं। अब इन्हें देखने का मौका भी मिल गया। आए दिनों समाचार-पत्रों में ये नाम आते ही रहते हैं। सरा रॉयल सीमा गुटों के झगड़ों के लिए कुख्यात है।...यहाँ पर गुटों की राजनीति चलती है। लाठी, छूरी, तलवार, पिस्तौल, बंदूक हथगोलों से एक गुट का दूसरे गुट पर हमला आम बात है यहाँ।

हाल ही में एक मंत्री के घर में भी बम विस्फोट हुआ था। शायद घर के अहाते में ही बम बनाया जा रहा था, जो अचानक फट गया। बिल्डिंग का एक हिस्सा पुरी तरह से ध्वस्त हो गया था और बम बनाते लोग भी मारे गये थे। विधानसभा और संसद में भी हंगामा हुआ था।

सारा रॉयलसीमा पहाड़ों से घिरा हुआ है।... पानी की विकट समस्या है यहाँ। बूँद-बूँद पानी के लिए किसानों को तरसना पड़ता है। इतनी सरकारें आयीं और चली गयीं पर किसी ने इस समस्या को हल नहीं किया। पानी की समस्या को लेकर बड़े-बड़े आंदोलन हुए है यहाँ। यहाँ की सारी राजनीति गुटों और पानी की समस्या पर ही निर्भर करती है।

नंदयाल में नाइट हॉल्ट करने का विचार था। पर सुबह आठ-नौ तक ताड़पत्री पहुँचना जरूरी था।... रात के करीब आठ बजे रहे थे। सीधी ताड़पत्री जाने वाली बस नहीं थी। वहाँ से बेनागानापल्ली के लिए अंतिम बस आने वाली

थी। सोचा क्यों न इसी बस में जाकर बेनागानापल्ली में ही नाइट हॉल्ट किया जाए। सुबह यात्रा के लिए दूरी तो घटेगी।...

सनसनी खेज खबर—

सुबह से समाचार-पत्र नहीं पढ़ा था। एक ठेले पर आज का पत्र मिल गया।... कॉलम बंधा हुआ एक सनसनी खेज खबर ।... कड़प्पा में ही कहीं एक रिक्शाचालक ने अपनी बीमार बूढ़ी सास को जिंदा ही दफना दिया था मृत बताकर, आर्थिक अभाव के कारण इलाज कराने में मजबूर।... मन खिन्न-सा हो गया था। पचास रुपयों के लिए हत्या या फिर नींव में गिरने पर उन्हें निकालने के बजाय ऊपर माल डाल देने वाली घटना से कहीं ज्यादा भयंकर थी यह घटना।

रात के साढ़े ग्यारह बजे के करीब बेनागानापल्ली पहुँचा। पास के ही एक लॉज में जाकर रुका। सुबह उठते ही ताड़पत्री की यात्रा। करीब सात बजे ताड़पत्री पहुँचा। वहाँ से पेन्ना सिमेंट के लिए तुरन्त बस मिल गयी। पर बस चेकिंग के लिए बीच में ही रूक गयी।

पकड़ा गया गिरिजन छोकरा —

बस की चेकिंग हुई। कोई नहीं मिला। पर एक स्कूल का छात्र जिसके पास 'पास' था पकड़ में आ गया। गिरिजन छोकरा था। सुबह के वक्त उसे पहाड़ से नीचे ताड़पत्री स्कूल आना था और दोपहर बाद नीचे से ऊपर आना चाहिए था। परंतु वह सुबह-सुबह ही नीचे से ऊपर जा रहा था। बस, पकड़ में आ गया। केस बुक हो गया। लंबा चौड़ा स्टेटमेंट डूप्लीकेट में लिखा गया। लड़के का हस्ताक्षर लिया गया। कंडक्टर का हस्ताक्षर लिया गया।

मैंने कंडक्टर से पूछा- ''इसके बाद क्या होगा?'' वह बोला- ''क्या होगा।? बस इस बरस का इंक्रीमेंट बंद।''

बेचारा बहुत ही सीधा था। वह भी गिरिजन ही था। इसके पहले भी यात्रा करते हुए मैंने देखा था उसे। बहुत ही सहयोगपूर्ण व्यवहार था उसका यात्रियों से।... और कोई चालाक किस्म का कंडक्टर होता तो यहाँ तक नौबत ही नहीं आने देता। प्राय: कंडक्टर सोने की अँगूठी या चैन पहने रहते हैं।... जब कभी भी ऐसा केस बनने की हालत होती है आजिजी करने के बहाने चुपचाप अँगूठी या चैन निरीक्षक के हाथों में थमा देते हैं। बस सब कुछ क्लीयर। कंडक्टर ही क्यों रिश्वतखोर सारे सरकारी कर्मचारी भी ऐसा ही करते हैं।

वह औरत—

बस में मेरी सीट के सामने वाली सीट पर एक औरत बीस-बाईस साल की। गोरी-चिट्टी और चुस्त। कमर के पास बंधे कपड़े में दो-तीन महीने का बच्चा माँ की तरह का ही गोरा-चिट्टा, अपनी छोटी-छोटी आँखों से टुकर-टुकर देखता हुआ। बहुत ही प्यारा बच्चा। यहाँ पर इन्हें 'पूसा वेरलू' कहते हैं। औरतों के काम आने वाले सामान जैसे कंघी, जूड़ा, स्नो, पावडर, सुई, कुमकुम, टिकली, काजल आदि टोकरी में रखकर बेचना इनका धंधा है। निरीक्षक द्वारा पकड़े गये लड़के की तरफ देखती बोली- ''बेटा, आज हमको धंधे पर देर करा दिया ना।''

मेरे पूंछने पर बतायी कि पहाड़ी पर छोटी-छोटी बस्तियाँ हैं। एक बस्ती यहाँ तो दूसरी तीन-चार किलोमीटर दूरी पर। वहीं घूमते हुए धंधा करने जा रही है।

बच्चे को दूध पिलायी। फिर बैठे-बैठे ही गहरी नींद में चली गयी थी।... बच्चे के प्रति बिंदास।... बच्चा कहीं जाने का सवाल ही नहीं था। बंधा हुआ जो था। और माँ की तरह वह भी बिंदास। न खिंचाई न रुलाई। बस अपनी छोटी-छोटी आँखों से इधर-उधर निहारता हुआ। इन्हें देखकर आश्चर्य हुआ कि इतना कठिन जीवन भी किस सहजता से जी लेते हैं ये लोग।... छोटा बच्चा उनके धंधे में कोई समस्या ही नहीं है।

उकता कर बस से नीचे उतर आया था मैं। होंठों के छोर से बहते लार भरी झपकी से केवल दस मिनट में ही फ्रेश हो गयी थी वह। वह भी नीचे उतर आयी।

बस की छत की तरफ देखती आवाज दी उसने। आश्चर्य, उसकी साथिन, ऊपर बस की छत पर अकेली बैठी हुई थी उन दोनों के धंधों की टोकरियाँ सँभाले हुए।

'कोना' की रोमांचक यात्रा —

पेन्ना सिमेंट कंपनी के पीछे करीब आधा किलोमीटर की दूरी पर 'कोना' नाम के स्थान पर भगवान विष्णु का मंदिर । बस से भी यात्रा की जा सकती है। परंतु बस बहुत घूम-फिर कर जाती है। यह पिछवाड़ा वाला रास्ता ही बहुत करीब है।... पिछवाड़े की चहारदीवारी में एक छोटा-सा गेट है जो दिन में उनके किसी काम से खुला रहता है और शाम में करीब पाँच बजे बंद कर दिया जाता है। सोचा, चलो यह जगह भी घूम आयें। शाम के करीब साढ़े चार बज रहे थे। वाचमैन ने हिदायत भी दी कि अभी जाना ठीक नहीं है, सुबह के वक्त जाना ठीक रहेगा कहकर।... परंतु मैंने कहा 'कुछ नहीं होगा। मैं किसी तरह बाउंड्री से होता हुआ मेन गेट से वापस आ जाऊँगा।'

पीछे एकदम सुनसान। करीब पंद्रह मिनट चलकर वहाँ पहुँचा।... नीचे करीब डेढ़ सौ फुट की गहराई वाली खाई।... खाई में ही एक पुराना मंदिर दिखलाई दे रहा था।... एकदम सुनसान।... मैं पगडंडी के सहारे सँभाल-सँभाल कर एक-एक पाँव रखता हुआ नीचे पहुँच गया।... नीचे झर-झर करता बहता झरना। खाई की दोनों तरफ दो ऊँची-ऊँची पहाड़ियाँ। यह जगह मंदिर के कंपाऊँड का पिछवाड़ा था। झरने के गिरने का यह दृश्य सचमुच बहुत ही लुभावना था।... चारों तरफ छायी नीरवता। इस नीरवता को बंदरों की किच्-किच् और गंभीर बना रही थी। कोई मानव मात्र नहीं वहाँ।

प्रकृति की इस छटा को देख वहाँ से हटने का मन ही नहीं कर रहा था। झरने के पास ही बैठ गया एक बड़े से पत्थर पर , पाँवों को पानी में डुबोये हुए। उथल-पुथल करते बहते पानी का रोमांचक स्पर्श। यह जगह एक अकेले के आने की जगह नहीं थी। कोई आकर कुछ कर जाए तो किसी को पता तक न चले। कुछ देर बाद मंदिर की चहारदीवार के अहाते से होता हुआ मंदिर के सामने चला गया।

पुराना मंदिर था। विशालकाय दरवाजा भी पुराना, पर मजबूत।... अंदर गया। पुजारी का परिवार कम्पाऊंड के अंदर ही एक तरफ बने घर में रहता था।... बूढा बाप बरामदे में खाट पर लेटा खाँस रहा था। बूढ़ी माँ... पत्नी और एक-दो अधेड़ उम्र की औरतें। उनमें भी इतना कोई आकर्षण नहीं। जनमानस से दूर इस सूनी खाई में रहने के लिए उनका आकर्षण-विहीन होना भी एक प्लस पॉइंट था।

मुझे मंदिर में कोई दिलचस्पी नहीं थी। पीपल के पेड़ के नीचे बड़े-बड़े दरारें पड़ी, चबूतरे पर जाकर बैठ गया। कुछ देर बाद ताड़पत्री गाँव से दो आदमी स्कूटर पर आये पूजा के लिए। साथ में नारियल और पूजा की अन्य सामग्री भी लाये थे। वे मंदिर के गर्भ-गृह में चले गये। पुजारी और उसका परिवार मेरे बारे में जाने क्या सोचेगा यह सोच मैं भी मंदिर में चला गया। पुजारी ने बारी-बारी से नाम और गोत्र पूछते हुए पूजा किया। मेरा नाम और गोत्र पूछा तो मैंने भी बता दिया। नारियल वगैरह तो मैं लाया नहीं था। आरती की थाली में दस रुपये का नोट डाल दिया। पुजारी ने असीम कृपा मुझ पर दिखलायी। भगवान के उन भक्तों को नारियल का एक-एक चिप्पा दिया और मुझ जैसे नास्तिक को दो।

बाहर आ गये। चबूतरे पर बैठकर वे पंडितजी से बतियाने लगे। उनमें से एक ने मेरी तरफ देखते हुए पूछा- "आप भी पद्माशाली (जुलाहा) हैं न?"

मुझे आश्चर्य हुआ। हाँ कर सर हिंलाता हुआ मैंने पूछा- "पर आपको कैसे पता चला।?"

"आपने अपना गोत्र मारकंडे कहकर बताया न, इसी से मैंने अंदाज लगाया।" उसका जवाब था।

वे दोनों भी हमारी ही जाति के थे। एक तरह का सामीप्य आ गया था हममें।... कुछ देर हमारी जाति को लेकर गपशप होती रही उनसे। मैंने पंडित से पूछा- "आप लोग अकेले रहते हैं। चोर-उचक्के परेशान नहीं करते हैं क्या।?"

वह बोला- "अब तक तो दो बार पूरी तरह लूटकर ले गये। अब क्या है हमारे पास ले जाने के वास्ते।"

कुछ देर बाद मैंने जाना उचित समझा। जाने का रास्ता पूछा तो बोले-

"मंदिर के सामने से जो रास्ता जाता है उसमें सीधा निकल गये तो आधा-पौन किलोमीटर की दूरी पर पक्की सड़क आएगी। सड़क पकड़ कर जाने से सीधा फैक्टरी के मेन गेट तक पहुँच जाओगे।"

मैं बाहर आ गया। चौड़ी कच्ची सड़क। मैं उसी पर बढ़ गया। शाम का झुरमुटा था। अँधेरा नहीं हुआ था। हाथ में नारियल का का एक चिप्पा। एक और चिप्पा तो मंदिर में ही फोड़कर थोड़ा खाकर बाकी बंदरों के हवाले कर दिया था। यह रास्ता भी सुनसान। किनारे पर दो झोपड़ियाँ, केवल दो ही दो। छीन के झाड़ों से सेंधी निकालने वालों की छीन पर हंडियाँ बंधी हुई थीं। कुछ आगे बढ़ा तो बीस-बाईस साल का एक छोकरा उधर से आता दिखलाई दिया। शायद वह भी सेंदी निकालने वाला था। नारियल का चिप्पा उसे दे दिया। करीब सवा-देढ किलोमीटर तक चला गया पर मुख्य सड़क का कोई अता पता ही नहीं।... पीछे से स्कूटर पर मंदिर में मिलने वाले दोनों आये। स्कूटर रोक कर बोले- "यह रास्ता तो सीधा ताड़पत्री जाता है। आप गलत रास्ते पर आ गये हैं। मंदिर के ठीक सामने से जो पगडंडी जाती है, वह मेन सड़क से मिलती है।"

उन्होंने बताया कि वह पगडंडी पहाड़ पर होती हुई जाती है और दूसरी तरफ नीचे उतरते ही सड़क पर। उन्होंने सुझाव दिया कि उस पर अभी जाना ठीक नहीं है। पेन्ना सिमेंट के पिछवाड़े वाले जिस रास्ते से आया थां उसी से जाना ठीक रहेगा।

मैं समझा बुरे फँसे। वापस मंदिर के पास आ गया। अँधेरे ने अपने डैने फैलाना आरंभ कर दिया था। मंदिर के पिछवाड़े में चला गया। झरना उसी तरह कल-कल बह रहा था।... नीरवता और बढ़ गयी थी। पगडंडी नुमा रास्ते पर करीब दो-ढाई सौ फुट की ऊँचाई अँधेरे में चढ़ना था। किसी से सामना हो जाय तो बचना मुश्किल। घड़ी और अँगूठी निकालकर पैंट के चोर पॉकेट में डाल लिया यह जानते हुए भी कि लूटने वाले के लिए इसे निकालना कोई बड़ा काम नहीं है। पर्स में रेडियम काटने वाले छोटी पर तेज धारवाली छूरी थी, निकालकर हाथ में पकड़ लिया हालाँकि यह भी पता था कि किसी पर वार करने का साहस मुझमें

नहीं है। अँधेरे में टटोलता-टटोलता चढ़ाई चढ़ने लगा। एक जगह बड़े से पत्थर पर पाँव रखा तो वह लुढ़क गया। किसी तरह अपने-आपको संभाल लिया नहीं तो पत्थर के साथ मैं भी सीधे खाई में चला जाता।

खैर किसी तरह ऊपर आया। पेन्ना सिमेंट की लाइट देखकर जान में जान आयी। पिछवाड़े वाला गेट के खुला रहने का सवाल ही नहीं था। दूर मेन सड़क पर स्ट्रीट लाइट दिखलाई दे रहे थे। ऊबड़-खाबड़ कंकड़-पत्थरों से होता हुआ उसी तरफ बढ़ गया। बीच में बंजारों के डेरे। इतनी रात में अकेला पाकर कुछ कर दें तो? पर कुछ नहीं हुआ। मेन सड़क पर आकर अपने आपको सुरक्षित पाया मैंने।

इस तरह रॉयलसीमा की यह यात्रा मेरे लिए बहुत ही महत्वपूर्ण और रोमांचक रही। वैसे घूमने के लिए तो और भी जगहें थीं पर समयाभाव के कारण घूमना संभव नहीं हो सका।

रॉयलसीमा में दरिद्रता का नंगा नाच हो रहा है। बिना पानी के वहाँ का किसान छटपटा रहा हैं।...गुटीय संघर्षों के बीच वहाँ का आम आदमी भयभीत-सा है। पर फिर भी जीविका के लिए संघर्ष जारी है।...



2. यात्रा – सम्मक्का सारक्का के बलिदान की कहानी कहती पुण्य भूमि की

भारत में कुंभ मेले के बाद दूसरे स्थान पर आता है तेलंगाना का 'सम्मक्का-सारक्का' का मेला। वारंगल जिले के मेड़ारम जनपद में भरने वाले इस 'सम्मक्का-सारक्का' मेले में जाने के लिए जब मैंने अपनी इच्छा जाहिर की तो श्रीमती सन्न् सी रह गयी। वह मेले में मेरे जाने का विरोध करती रही। कारण था उसका अपना अनुभव इस मेले से संबंधित। सत्रह-अठारह वर्ष पहले वह इस मेले में गयी थी और वहाँ पर इतनी भीड़ थी कि धक्कमपेल में उसकी आँखों के सामने ही तीन-चार लोग कुचलकर मौत के शिकार हो गये थे। 'उपरोक्त घटना तो सत्रह-अठारह साल पहले की है, अब तो स्थिति में बहुत ही बदलाव आ गया होगा' कहते हुए मैंने उसे समझाने की बहुत कोशिश की, परन्तु वह मान ही नहीं रही थी। खैर किसी तरह उसकी इच्छा के विरुद्ध ही मेले के लिए निकल पड़ा।

इस मेले को देखने की मुझमें बहुत ही उत्सुकता थी। कारण यह भारत के अन्य प्रदेशों में भरनेवाले मेलों से कई मामलों में अलग है। दूसरे मेलों की तरह न तो यहाँ कोई मंदिर है और न ही कोई मूर्ति। यह गिरिजनों का, आदिवासियों का मेला है। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है, यह भारत में कुंभ मेले के बाद दूसरे स्थान पर है और दक्षिण भारत का सबसे बड़ा मेला है। यही नहीं इसकी गिनती भारत में सबसे बड़े गिरिजन मेले के रूप में होती है। यह गिरिजनों के हक के लिए लड़ते हुए वीरगति पानेवाले सम्मक्का-सारक्का नामक दो वीरांगनाओं की स्मृति में भरता है।

इस मेले में आंध्र प्रदेश के कोने-कोने से ही लोग नहीं आते हैं बल्कि छत्तीसगढ़, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़िसा, बिहार और झारखंड जैसे दूर-दराज प्रांतों से भी लाखों की तादाद में आते हैं। गिरिजनों के साथ-साथ गिरिजनेतर भी

उसी श्रद्धा, उसी विश्वास और उसी उत्साह से इस मेले में आते हैं।

मेड़ारम, दंडकारण्यम में एक गिरिजन बस्ती है। तेलंगाना के वारंगल शहर से 150 किलोमीटर की दूरी पर मुलुगु तालुका के ताड़वाई मंडल में पड़ता है। दो वर्ष में एक बार माघ महीने में शुद्ध पूर्णिमा के दिन से तीन दिन के लिए भरता है यह मेला। मेले में इतनी भीड़ होती है कि लोग इससे बचने के लिए दस-बारह दिन पहले से ही आकर अपनी मनौती पूरी करके चले जाते हैं। यही नहीं इसका विच्छेदन भी कर दिया गया है। अब यह मेला करीमनगर के पास रेकुर्ती और चिंतलगुंटा में, सिरसिल्ला मंडल के ओबलापुर में, हुजूराबाद मंडल के रंगनायकुला गुट्टा, इल्लंतकुंटा, हुसनाबाद मंडल के भीमदेवरपल्ली, करीमनगर जिले के गोदावरी खनि और आदिलाबाद जिले के मंचेरियाल जैसे जगहों पर भी भरने लगा है।

यहाँ के लोग भावनात्मक रूप से इस मेले से इस कदर जुड़े हुए हैं कि सिंगरेनी कॉलरीस की कोयला खदानों में इस मेले के वक्त अनुपस्थिति इतनी बढ़ जाती है कि खदान सूने-सूने से लगने लगते हैं। इससे तंग आकर सिंगरेनी अधिकारियों ने मंदामरी और गोदावरी खनि जैसे जगहों पर हर संभव सुविधा उपलब्ध कराते हुए मेलों का बंदोबस्त कराया है परन्तु स्थिति में कोई बदलाव नहीं आया। मेले के वक्त खदानों के सूने पड़ जाने का क्रम अभी भी जारी है।

मेरी यात्रा सुबह नौ बजे आरंभ हुई। इसके लिए मुझे वारंगल जाने की जरूरत नहीं पड़ी। मंचेरियाल से ही गोदावरी खनि, मंथनी होते हुए सीधे मेड़ारम के लिए बसों का आयोजन था। साढ़े दस बजे के करीब हमारी बस मंथनी पहुँची। पहले भी मैं मंथनी तक यात्रा कर चुका हूँ पर उसके आगे पहली बार जा रहा था। यहाँ से जंगल का इलाका आरंभ हो जाता है।

दुर्ग की तरह बना पुलिस थाना —

रास्ते में काटारम गाँव पड़ता है। पुलिस थाना सड़क के किनारे ही था। पर किसी भी दृष्टि से वह थाना नहीं लग रहा था। ऐसा लग रहा था मानो कोई दुर्ग हो।

बोर्ड देखकर ही पता चला कि यह पुलिस थाना है। सुरक्षा की दृष्टि से ही इसका निर्माण इस तरह किया गया है। मंथनी से आगे का इलाका संवेदनशील इलाके के रूप में जाना जाता है। यह नक्सल प्रबल इलाका है। वेंकटापुरम, गारेपल्ली, काटारम, कन्नेपल्ली, मेड़ारम और इससे आगे एटुरीनागारम, मुलुगु, ताड़वाई सब नक्सल प्रबल इलाके ही हैं। ये सब इलाके घने जंगलों से घिरे होने के कारण नक्सलवादियों के बहुत ही अनुकूल हैं। मुठभेड़ होना, बारूदी सुरंगों का फटना, पुलिस स्टेशन पर धावा पड़ना यहाँ पर आम बात है।

'भूपालपल्ली' नयी उभरती कोलियरी —

हमारी बस करीब एक बजे भूपालपल्ली पहुँची। सबकी सहमति से बस भूपालपल्ली में ही लंच के लिए रोक दी गयी।

भूपालपल्ली एक नई उभरती कोलियरी है। पहले सिंगरेनी कोयला खदान का क्षेत्र मंदामरी, बेल्लमपल्ली, सोमागुडेम, रामकृष्णापुरम, गोलेटी, मादारम, गोदावरी खनि और आगे जाने पर इल्लंदू, मनुगुरू, कोत्तागुडेम आदि तक था। पर इनमें से अधिकतर खदान एक के बाद एक बंद होते चले गये। अब भूपालपल्ली क्षेत्र में खदानों को डेवलप किया जा रहा है। बंद होने वाले खदानों से कुछ लोगों को मेडिकल अॅनफिट करके निकाला गया तो कुछ को 'गोल्डन शेक हैंड' स्कीम से वालेंटरी रिटायरमेंट देकर। जो बच गये उनका तबादला यहाँ भूपालपल्ली किया गया। खदानों के बंद होने का, वालेंटरी रिटायरमेंट का और तबादले का यह सिलसिला अभी भी जारी है।

भूपालपल्ली से सड़क के किनारे नयी-नयी दुकानें उभर आयी हैं। नयी कॉलनी बसा दी गयी है। अब तक के शांत इंटीरियर क्षेत्र में चहल-पहल आरंभ हो चुकी है। शांत प्रकृति के आंचल में अब औद्योगिक संस्कृति अपना पंजा फैलाने लगी है। दिन ब दिन सारा माहौल, मंदामरी, बेल्लमपल्ली, धनबाद या झरिया के माहौल में बदलता चला जा रहा है। सिंगरेणी खदानों में एक बड़ा बदलाव और भी

आ रहा है। पुराने अंडर ग्राऊंड (भूमिगत) खदानों को ओपनकॉस्ट में परिवर्तित किया जा रहा है। जो नये खदान आरंभ किये जा रहे हैं वे सारे के सोर ओपनकॉस्ट ही हैं। इससे यहाँ पर दिन-ब-दिन रोज़गार के अवसर कम होते चले जा रहे हैं। तेलंगाना में सबसे ज़्यादा नौकरी का अवसर खदानों में ही था क्योंकि अंडर ग्राऊँड खदानों में सब काम मैनुवल होता था। ओपनकॉस्ट में यंत्रों द्वारा खुदाई होने लगी है। इसी कारण यहाँ आये दिन आंदोलन होते रहते हैं। यही नहीं ओपनकॉस्ट पर्यावरण के लिए भी खतरनाक साबित हो रहे हैं।

भोजन के लिए ड्रायवर, कंडक्टर और कुछ यात्रियों के साथ मैं भी एक होटल में चला गया। खाकर बाहर आया तो होटल के बगल में बंद शटर वाले दुकान के सामने हमारे बस यात्रियों का एक बड़ा सा मजमा दिखलाई दिया। अपने साथ लाये भोजन को सब अपने-अपने समूह में नीचे बैठे खा रहे थे कोई पालती मारे बैठे हुए, कोई दोनों टांगें फैलाये बैठे हुए, तो कोई उकडू बैठे हुए। यही तो सब मैं देखना चाह रहा था जहाँ सभ्य समाज के सारे नियम, सारे दिखावे ताक पर रख दिये गये हों। मेड़ारम का मेला भी तो इसी तरह के अनपढ़, गंवारों का ही मेला है न।

यात्रियों के स्वागत में बैनर —

भूपालपल्ली से मेड़ारम करीब 150 किलोमीटर की दूरी पर है, मेले में जाने वाले यात्रियों के स्वागतार्थ होटलों के सामने, दुकानों के सामने, गलियों के मुहानों पर, चौराहों पर बैनर लगे हुए थे। सामाजिक संस्थाओं के, राजनीतिक पार्टियों के, व्यवसायिक संस्थानों के सबके अपने अलग-अलग बैनर। इतनी दूरी के बावजूद भी मेले का माहौल आरंभ हो चुका सा लगा। मेले में पहुँचने तक हर थोड़ी-थोड़ी दूरी पर बैनर लगे हुए थे। रास्ते भर जंगल में यहाँ-वहाँ शामियाना तानकर अस्थाई होटल बने हुए थे।

सड़क के किनारे भागते बंदर —

भूपालपल्ली पहुँचने के पहले ही जंगल में सड़क के किनारे बंदर ही बंदर। सब बस के समानांतर भाग रहे थे। ड्राइवर ने बस धीमी कर दी थी। यात्रियों ने केला, बिस्कुट जो भी उनके पास था खिड़की से बाहर फेंकना आरंभ कर दिया था। बस के समानांतर भागते हुए वे इन चीजों को लपक रहे थे। सबका बहुत ही मनोरंजन हो रहा था। जंगल में सड़क के किनारे डेढ़-दो किलोमीटर तक ये दिखलाई देते हैं। लगता है सबका अपना अलग-अलग क्षेत्र। कुछ दूर तक ये भागते हैं और रूक जाते हैं वहाँ से दूसरे। लगता है इनमें रिले रेस चल रही हो। बूढ़े, जवान, बच्चे सभी तरह के बंदर।

देवी माँ का आना —

बस में ही अधेड़ उम्र की एक औरत को देवी आ गयी। वह हिचकी लेते, मुंह से विचित्र सी ध्वनि निकालते हुए झूमने लगी। बगल में बैठी उसकी जवान बेटी ने हल्दी की पोटली निकाल उसके माथे पर टीका लगया। वह कुछ देर उसी तरह झूमती रही और फिर धीरे-धीरे शांत होने लगी। उसके शांत होते ही पिछली सीट पर बैठी एक अन्य महिला ने भी इसी तरह करना आरंभ कर दिया। मेड़ारम मेले में जाने वालों के लिए यह एक आम बात है। मेले में भी लोगों को इसी तरह से सामूहिक रूप में देवी आती है।

यह एक साइकिक प्रक्रिया है। देवी माँ पर अतिविश्वास और भक्ति के कारण इतने भावुक और संवेदनशील हो जाते हैं कि उन्हें लगता है कि सचमुच में देवी माँ उन पर आ गयी है और वे इस तरह की हरकत करने लगते हैं। इन्हें देखकर इसी तरह की मानसिकता वाले अन्य संवेदनशील लोग भी इसी तरह की स्थिति से गुजरते हैं। इस तरह यह एक मॉस हिस्टीरिया में परिवर्तित हो जाता है। यह एक मॉस साइकिक का परिणाम है। इसी मनोवैज्ञनिकता का एक दिलचस्प उदाहरण है, 'अम्मोर' नामक तेलुगु पिक्चर से संबंधित। यह पिक्चर तीन-चार साल पहले रिलीज हुई थी। इसमें देवी माँ के आने का दृश्य बहुत ही प्रभावशाली ढंग से दर्शाया गया है। हाथों में नीम की डालियां पकड़े, माथे पर बड़ा सा टीका लगाये,

सर पर खुले बालों के साथ नगाड़ों की थाप पर देवी माँ आने वाली को आत्मविभोर झूमते देख हाल में बैठे इसी तरह की मानसिकता वाले लोग भी झूमने लगते थे। उन्हें शांत करने के लिए टॉकिस में एक ओझा को भी रखा जाता था। जिस किसी को भी देवी माँ आती वह उनके पास पहुँच जाता और मंत्र फूंककर, हल्दी का टीका लगा, कपड़े से बने अपने कोड़े से उसकी पीठ पर धीरे से मार उन्हें शांत करता।

मेड़ारम मेले में भी जहाँ-तहाँ यह दृश्य देखने को मिलता है। भीड़ के कारण देवी माँ के चबूतरे के पास पहुँचने की जल्दी में भी कुछ लोग इस तरह का देवी आने का नाटक करने से भी बाज नहीं आते हैं।

देहातों में पहले इस तरह की देवी आना आम बात थी। किसी की पीठ पर वेमलवाड़ा मल्लन्ना (शंकर) आता तो किसी की पीठ पर मेड़ारम सम्मक्का, सारक्का, किसी को पोचम्मा देवी आती तो किसी को कट्टा मैसम्मा। लोग देवी आनेवाले के चारों तरफ घिर आते थे। उससे अपनी नाराजगी का, आक्रोश का कारण पूछते थे। अपनी समस्या बताकर उसका समाधान पूछते थे। समस्या का निदान पाने के लिए वह किसी को हर शनिवार देवी माँ की मूर्ति पर पानी चढाने का निर्देश देती तो, किसी को वेमलवाड़ा जाकर शंकर भगवान का दर्शन करने को कहती। किसी को काली मुर्गी की बलि देने के लिए कहती तो, किसी को बकरे की।

अब देहातों में लोगों के दृष्टिकोण में आये बदलाव के कारण इस तरह की देवी माँ का आना कम हो गया है। अगर एकाध को आये भी तो लोग अपनी समस्याओं के समाधान के लिए उसके पास नहीं जाते हैं।

खेती करने के तरीकों में आया बदलाव और किसानों में बढ़ती आत्महत्या दर-

घने जंगलों के बीच से चले जा रहे थे। बीच-बीच में खुले मैदान। धान के लहलहाते खेत। कहीं-कहीं पर सरसों की खेती। कालीन की तरह बिछे पीले-पीले फूल बहुत ही लुभावने लग रहे थे। और उनके बीच कहीं-कहीं पर लम्बे और

हरे पत्ते वाले पौधे। समझ में नहीं आ रहा था कि क्या है। बगल में बैठे यात्री से पूछा। उसने बताया कि तम्बाकू के पौधे हैं। तब मुझे याद आया कि हाँ मैंने तम्बाकू के पौधे पहले भी देखे हैं। जब मैं छोटा था तो कभी-कभी चाचा के घर जाया करता था। उनके घर के पिछवाड़े में बाड़ी के किनारे-किनारे तम्बाकू के पौधे लगे होते थे। एक-डेढ़ फीट की लम्बाई वाले हरे-हरे पत्ते बहुत ही लुभावने लगते थे। कल्पना भी नहीं की जा सकती कि ये पत्ते ही सूखकर नशीली वस्तु में परिवर्तित हो जाते हैं। चाचाजी चुरूट पीते थे, स्वयं अपने हाथ का बना हुआ। इसी जरूरत के लिए ही वे पिछवाड़े में तम्बाकू के पौधे लगाते थे। बाद में इन पत्तों को सुखाकर सम्हालकर रख लेते थे और साल भर तक इन्हें लपेट कर चुरुट बनाकर पीते थे।

बाड़ी के किनारे-किनारे तम्बाकू के साथ-साथ जिमी कंद के भी पौधे लगे होते थे। पिछवाड़े की थोड़ी सी जगह में ही एक तरफ मकई की खेती होती थी। एक तरफ सेम की लतायें पेड़ की गड़ी हुई सूखी डालियों पर छायी हुई होतीं। इन सब पुरानी स्मृतियों के साथ ही यह ख्याल आया कि इस बीच किसानों में आत्महत्या की जो दर बढ़ी है वह इसी क्षेत्र में कहीं ज्यादा है। इस तरह भारतीय खेती में आये बदलाव और किसानों में लगातार बढती आत्महत्या की मानसिकता की तरफ ध्यान चला गया।

अंग्रेज आने के पहले हमारे देश में खेती आवश्यकता की पूर्ति के लिए होती थी। यह एक तरह की सामंती खेती थी। छोटे-बड़े किसान ही नहीं जमींदार भी अपनी जरूरत के मुताबिक खेती के थोड़े हिस्से में धान बोते, थोड़े हिस्से में जवारी, थोड़े में मकई, थोड़े में अरहर, थोड़े में तम्बाकू और थोड़े में और कुछ। इस से उनकी जरूरत पूरी हो जाती। किसी को दूसरे के पास जाने की जरूरत नहीं पड़ती। जो कुछ ज्यादा बचता उसे बेच देते। परन्तु अंग्रेज आने के बाद से खेती व्यापार के लिए होने लगी। जिस वस्तु की बाजार में मांग होती उसकी ही खेती की जाने लगी। इसका दुष्परिणाम किसानों को उस समय तो भुगतना ही पड़ा पर आज तो अपने उग्र रूप में पहुंच गया है। एक ही किस्म की फसल बाजार में आने से कीमतों में मंदी आना स्वाभाविक है। सेठ-साहूकार भी जानबूझकर माल नहीं

उठाते हैं। किसान पैदावर को ज्यादा समय तक अपने पास नहीं रख पाता है। रसायनिक खादों, कृमि संहारक दवाओं और यंत्रों के उपयोग के कारण भी खेती की लागत बहुत बढ़ गयी है। इन सबके लिए लाये गये ऋण तले वह दबा होता है। इसलिए कभी-कभी तो लागत से भी कम कीमत पर उसे पैदावर बेचना पड़ता है। परिणाम! इतने परिश्रम के बाद भी उसका भूखे मरना और ऋण के भार तले दिन ब दिन दबते चले जाना। फलस्वरूप वह आत्माहत्या की ओर अग्रसर होता है।

स्थिति तो यहाँ तक आ गयी है कि वह अपनी मर्जी से कोई फसल नहीं लगा सकता है। कौन सा फसल लगाये और कौन सा नहीं यह सरकार तय करती है। अगर वह सरकार द्वारा निर्देशित फसल नहीं लगाता है तो नहरों की सुविधा वाले प्रांत में नहरों का पानी उसे उसकी अपनी जरूरत के मुताबिक नहीं मिल पाता है। इसी तरह रासायनिक खाद या बीज वगैरह भी सरकार द्वारा निर्देशित फसलों के लिए ही दी जाती है।

इस क्षेत्र और इससे जुड़े परकाल जिले के देहातों में ही किसानों में आत्महत्या की दरें सबसे ज्यादा है। यहाँ पर विशेष रूप से तम्बाकू और कपास की खेती होती है। इसकी खेती के लिए ये बैंकों से अथवा सेठ-साहुकारों से ऋण लेते हैं, इस उद्देश्य से कि पैदावार आते ही चुका देंगे। पर कभी वर्षाभाव के कारण, कभी खरीदे गये बीजों की खराब गुणवत्ता के कारण, कभी फसलों के कीड़े लगने के कारण, कभी मिलावट किये गये रासायनिक खादों आदि के कारण पर्याप्त पैदावर नहीं होती है। अगर हो भी जाये तो मार्केट में मंदी के कारण वह नुकसान उठाता रहता है। ऋण का भार इतना बढ़ जाता है कि इससे उबरने का एकमात्र उपाय उसे आत्महत्या ही लगने लगता है। और वह आत्महत्या भी प्राय: खेतों में छिड़कने के लिए लाये गये एंड्रीन जैसे कीटनाशक दवाओं को पीकर करता है, कभी अकेले ही तो कभी सारे परिवार के साथ।

अगर विश्लेषण किया जाय तो हम पाते हैं कि यह आत्महत्या की दर गरीब किसानों से, मध्यमवर्गीय किसानों में कहीं ज्यादा है। यह मध्यमवर्गीय किसान वर्ग के, पैसे कमाने की होड़ की मानसिकता का ही यह परिणाम है। यह

भूमंडलीकरण से आयी एक विकृति है। उसकी मध्यमवर्गीय मानसिकता नुकसान के झटके को बरदाश्त करने में असमर्थ होती है, जबकि गरीब किसान इन सबका सामना कर लेने में कुछ हद तक सक्षम होता है और यह सक्षमता तो गिरिजनों में कहीं ज्यादा होती है। हम पाते हैं कि गिरिजन भूख से मर जाता है परन्तु आत्महत्या नहीं करता है।

'सड़क', 'सरकार' और 'नक्सलवादियों' के अपने-अपने व्यूह —

मेड़राम तक पहुंचने के लिए अब तो सड़कें बन गई हैं। पर जैसा कि बताया जा चुका है पहले तो दस किलोमीटर की दूरी पर ही बसें रोक दी जाती थीं। वहाँ से धूल भरे रास्ते से पैदल चलते हुए जाना पड़ता था। पर इस दस किलोमीटर की दूरी तक पहुँचने के लिए भी वाहन चालकों को कई तरह के पापड़ बेलने पड़ते थे। बसें ऐसी चलती थीं मानों रेंग रही हों।

परंतु अब सड़कें बनने से इस समस्या का बहुत हद तक समाधान हो गया है। मेड़ारम तक सड़क बन गई है पर ये कहीं चौड़ी हैं तो कहीं संकरी। संकरी सड़कों पर चालकों को बहुत सावधानी से चलाना पड़ता है। थोड़ा भी चूके तो सामने से आने वाले वाहनों से टकराने का खतरा हमेशा बना रहता है। जाने वाली सभी बसें यात्रियों से भरी हुई थीं पर लौटती बसें पूरी तरह खाली।

मेड़ारम तक करीब आठ-दस वाहनों को सड़क के किनारे दुर्घटनाग्रस्त पाया। नक्सल बहुल इलाकों में सड़कों को लेकर भी सरकार और नक्सलाइटों का अपना-अपना व्यूह है। आंतरिक क्षेत्रों में सड़कें बनाने के बारे में सरकार कहती है कि वे इन क्षेत्रों की अभिवृद्धि करना चाहते हैं। दूसरें सभ्य समाज से इन लोगों को जोड़ना चाहते हैं। वहीं नक्सलवादी इसका तीव्र विरोध करते हैं। उनका कहना है कि अभिवृद्धि तो एक बहाना है। ये सड़कें इस वजह से बना रहें है कि अपने हक के लिए लड़ने वाले इन क्षेत्र के वासियों तक तुरंत पुलिस फोर्स भेज सकें। जब चाहे तब गस्ती पर आ सकें। यही नहीं उपभोक्ता वस्तुओं को जबरदस्ती उनके पास डम्प

कर सकें। जबरदस्ती उन वस्तुओं की लत डालें। बहुराष्ट्रीय कंपनियों को अपने उत्पाद की खपत के लिए देहात भारत में बहुत ही स्कोप दिखलाई दे रहा है। आज इन्हीं सड़कों के जरिये पेप्सी और कोका कोला जैसे उत्पादन यहाँ इंटीरियर में पहुँच रहे हैं। आश्चर्य होता है कि देहातों में किसी घर में जाने पर पहले की तरह चाय, शर्बत, दूध या मट्ठे से स्वागत नहीं होता है बल्कि पेप्सी या कोको कोला ऑफर किया जाता है। नक्सलवादियों का मानना है कि वर्ल्ड बैंक यूँ ही सड़क बनाने के लिए ऋण, देश की अभिवृद्धि के लिए नहीं दे रही है बल्कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों के हाथ का खिलौना बन उनके फैक्ट्रीरियों में बने माल की खपत के लिए दे रही है।

बारूदी सुरंगें : गोरिल्ला युद्ध का एक व्यूह —

नक्सलवादियों द्वारा बारूदी सुरंगों को ब्लॉस्ट करके शत्रुओं को हताहत करना भी उनके गोरिल्ला युद्ध का एक व्यूह है। इस रूट पर ब्लॉस्टिंग की बहुतायत की घटनाएँ हो चुकी हैं।

जिस रास्ते में शत्रुओं के आने की संभावना होती है उस सड़क पर अनुकूल जगह पर सड़क खोदकर उसमें ब्लॉस्टिंग से संबंधित बारूद रख दिया जाता है। जब शत्रु की गाड़ी उस पर से गुजर रही होती है तो पास ही कहीं छिपकर रिमोट कंट्रोल के द्वारा उसे ब्लॉस्ट किया जाता है।

व्यूह के तौर पर कुछ बार ऐसा भी हुआ है कि किसी शत्रु का उद्देश्यपूर्वक वध कर दिया गया। मुआयना करने के लिए पुलिस के उस रास्ते पर गुजरने पर सुरंग को ब्लॉस्ट करके उन्हें हताहत कर दिया गया। इसलिए अपने बचाव के लिए इस तरह की खबर मिलने के बावजूद कभी-कभी पुलिस घटना स्थल पर दो-तीन दिन तक नहीं पहुँचती है।

कुछ बार तो सड़क के निर्माण के वक्त ही किसी को मालूम पड़े बिना ही सड़क के नीचे बारूद रख दिया जाता है। यह काम इतनी सतर्कता से होता है कि वहाँ पर काम कर रहे लोगों को भी मालूम नहीं पड़ता है। यह बारूद सड़क के

नीच बरसों भी पड़ी रह सकती हैं। जब कभी उस रास्ते पर किसी टारगेट का गुजरना होता तब उसका उपयोग किया जाता है। तिरुपति में भूतपूर्व मुख्यमंत्री चंद्रबाबू नायडू और नलगोंडा के पास गृहमंत्री माधव रेड्डी पर हुए आक्रमण भी इसी तरह की बिछी बारूदी सुरंगों के जरिये हुए थे। निशाना इतना सही था कि गृहमंत्री तो वहीं ढेर हो गये पर चंद्रबाबू नायडू, निशाना सही होने के बावजूदर बुलेट प्रुफ कार के चलते बाल-बाल बचे।

जैसे कि पहले बताया जा चुका है इस रूट पर सुरंगें फटने की बहुतायत घटनायें हो चुकी हैं और क्या पता कितने सुरेंगें और बिछी हुई हों और उन पर न जाने किन-किन का नाम लिखा हो?

जातरा में —

तेलुगु में मेले को 'जातरा' कहा जाता है। यहाँ पर यह इतना प्रचलित शब्द है कि दूसरे भाषा-भाषी भी इसी शब्द का प्रयोग करते हैं।

करीब एक किलोमीटर की दूरी पर बस रोक दी गयी। हम वहाँ पर उतर गये। पैदल जैसे-जैसे बढ़ते गये भीड़ बढ़ती गयी। इतनी भीड़ की एक-एक कदम आगे रखना भी मुश्किल हो रहा था। वातावरण धूल से भरा हुआ था। लोग कपड़े से मुँह नाक ढँके हुए थे। कुछ लोग मॉस्क भी बांधे हुए थे। धूल के कारण नोस मॉस्क भी यहाँ पर बेचे जा रहे थे।

जंगल को काटकर जातरा के लिए विशाल मैदान तैयार किया गया था। मैदान में हजारों तंबू, जिधर देखो उधर ही तंबू। तीन-तीन चार-चार दिन से लोग यहीं पड़े हुए थे। बड़े-बूढ़ों से लेकर छोटे-छोटे बच्चे तक, सारे परिवार के साथ। खाना -पीना, सोना-जागना सब यहीं। लोग अपना अनुभव बताते हुए कह रहे थे कि जंगल से घिरा होने के कारण रात में इतनी ठंड पड़ती है कि हड्डियों तक में कंपकंपी सी आरंभ हो जाती है। चादर ऐसा भीग जाता है मानो पानी में डुबोकर निकाला गया हो। इसी तरह का अनुभव गोदावरी खनि और मंचेरियाल के गोदावरी नदी के तीर पर भरने वाले जातरा के बारे में भी लोगों ने बताया था।

यहाँ पर लोग रेत पर ही तंबू तानकर पड़े रहते हैं। दिन में तो कुछ पता नहीं चलता है परन्तु रात में इतनी ठंड पड़ती है कि रूह तक कांपने सी लगती है। फिर भी लोग इसे बरदाशत करते हैं।

मिनरल वाटर – कितना मिनरल ?

कॉलरा आदि बीमारी से बचने के लिए, पानी को उबालकर और फिर ठंडा करके पीने की हिदायत देते हुए जिला कलेक्टर के नाम से पांप्लेट बाँटे जा रहे थे। पर वहाँ पर मिनरल वाटर के पैकेट और बॉटल पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध थे। हर कोई पैकेट लेकर पीता दिखलाई दे रहा था।

आज मिनरल वाटर की खपत शहर और कसबों में ही नहीं कोको कोला या पेप्सी कोला की तरह दूर-दाराज के छोटे-छोटे गांवों में भी बढ़ गयी है। आश्चर्य होता है कि लोग बिना संकोच किये 12-13 रुपयों में बोतल खरीदकर गट्-गट् पी जाते हैं। आज पानी कीमती और दूध सस्ता हो गया है। दूध के लिए पैसा खर्च करने में लोग संकोच करते हैं पर पानी के लिए नहीं। यह भी जानना नहीं चाहते कि बोतल में बंद पानी सचमुच में मिनरल वाटर है या नहीं।

कुछ वर्षों पहले बी.आई.एस. वालों ने मार्केट से विभिन्न कंपनियों के मिनरल वाटर के सांपुल किये थे। उनके परीक्षण से पता चला कि उसमें स्वास्थ्य के लिए बहुत ही हानिकारक तत्व थे। इनमें प्रसिद्ध बहुराष्ट्रीय कंपनियों के उत्पादन भी शामिल थे। ये तत्व साधारण पानी में पाये जाने वाले तत्वों से नहीं ज्यादा खतरनाक थे। ये तो पैसे देकर बीमारी खरिदने वाली बात हुई।

मेरे एक मित्र ने मिनरल वाटर से संबंधित अपनी आँखों देखी एक बात बताई थी। मुंबई में वी.टी.के पास ही ट्रेन में यात्रियों द्वारा पीकर फेंके गये खाली बोतलों को इकट्ठा कर, बिना धोये ही सीधा नल से उनमें पानी भरकर सील कर रहे थे। यही बोतल बाजार में मिनरल वाटर के बोतल के नाम पर बेचकर उपभोक्ताओं को ठगा जाता है। अब कौन सा असली है और कौन सा नकली, भला आम

उपभोक्ता कैसे जानें?

आज तो बाजार में अनगिनत ब्रांड के मिनरल वाटर उपलब्ध हैं। मेड़ारम के जातरे में भी कई ब्रांड के मिनरल वाटर मिल रहे थे। अलग-अलग ब्रांड के मिनरल वाटर का स्वाद अलग-अलग। कुछ तो इतने बेस्वाद की पीना ही मुश्किल हो जा रहा था और फेंकना पड़ रहा था। अब वह कितना मिनरल वाटर है कौन बताये?

मिनरल वाटर का प्रचलन अब केवल बाजार में ही नहीं, घरों में भी आरंभ हो गया है। इन कंपनियों द्वारा घरों में उपयोग के लिए कैनों में रोज दूध की तरह सप्लाई किया जा रहा है। पार्टियों में, शादियों में तो हाल यहाँ तक है कि लोग हाथ भी मिनरल वाटर से धोने लगे हैं। घर के मासिक खर्च में यह भी एक नियमित व्यय बन गया है। आश्चर्य होता है कुछ घरों में यह व्यय उनके दूध के खर्चे से कहीं ज्यादा है। प्रायः हर ऑफिस में मिनरल वाटर से भरे कैन दिखलाई देने लगे हैं।

मिनरल वॉटर के लिए आई.एस.आई मार्क का होना बहुत जरूरी है। बिना इस मार्क के मिनरल वॉटर का बाजार में आने पर पाबंदी है। इससे संबंधित स्पेसिफिकेशन्स हैं। पर इन सबका कितना कड़ाई से पालन किया जा रहा है पता नहीं।

जहाँ एक तरफ देशी कंपनियाँ मिनरल वॉटर के नाम पर अपने ही देशवासियों को लूट रही हैं वहीं पर बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ हमारा पानी हमें ही पिलाकर देश का करोड़ों रुपया देश से बाहर भेज रही हैं। यही नहीं फेंके गये बाटलों और पैकेटों से पर्यावरण का भी भारी नुकसान हो रहा है। मिनरल वॉटर के ये बॉटल दुबारा उपयोग में नहीं लाये जा सकते हैं। पानी भरकर इसका दुबारा उपयोग करने से रेडियेशन के कारण लोगों में कैंसर जैसी भयंकर बीमारी आने का खतरा है। बॉटल के बार-बार उपयोग से यह खतरा और भी बढ़ता जाता है। इसलिए लोगों में इसके प्रति जागरूकता लाना बहुत ही जरूरी है। बॉटल पर भी बड़े-बड़े हर्फों में इसके

दुबारा उपयोग न करने से संबंधित जानकारी लिखी जानी चाहिए।

सम्मक्का–सारक्का का दर्शन —

प्राय: सभी मेलों में देवी देवताओं के दर्शन होते हैं परन्तु यहाँ पर वैसा कुछ नहीं है। दो चबूतरे और उन पर गड़े दो खंभे । गिरिजन मूर्ति पूजा में विश्वास नहीं करते हैं। उनके अपने लिए जीवन अर्पित करने वाले उनके पूर्वज ही काल क्रम में उनके देवी–देवता बन जाते हैं। जब किसी की मौत होती है तो गिरिजन लोग अपनी प्रथा के अनुसार उसे जमीन में दफना देते हैं और स्मारक के तौर पर वहाँ पर एक खंभा गाड़ देते हैं। उनकी अपनी जाति के लिए प्राण अर्पित करने वाले सम्मक्का और सारक्का के नाम पर दो चबूतरे बने हुए हैं और स्मारक के तौर पर उनमें गड़े दो खंभे। एक चबूतरा कुछ छोटा है और दूसरा बड़ा । बड़ा चबूतरा सम्मक्का का है और छोटा सारक्का का। इन्हें माँ–बेटी का चबूतरा भी कहा जाता है। इन चबूतरों के दर्शन और उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रदर्शित करने के लिए ही जन समंदर सा उमड़ा चला जाता है।

मेले का इतिहास—

मेले का इतिहास काकतीय राजाओं के काल से जुड़ा हुआ है। काकतीय राजाओं का काल 1083 से 1323 ईश्वी तक रहा है। इस काल को तेलुगु इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। भारत के इतिहास में राज्य करने वाली कुछ प्रमुख रानियों में एक नाम रुद्रमदेवी भी इसी काल से ही संबंधित है। इसके अंतिम राजा प्रताप रुद्र का काल 1290–1323 ई. तक रहा है। सम्राट के रूप में इसकी ख्याति दूर–दूर तक फैली हुई थी। इसकी राजधानी 'वारंगल' थी। वारंगल को उस समय 'वोरगल्लु' नाम से जाना जाता था। इसी वारंगल के ईशान्य में लगभग 110 कि.मी. की दूरी पर कोया गिरिजनों का निवास था मेड़ारम। घने जंगलों से घिरा हुआ। उस समय इन गिरिजनों का राजा था 'पागड़िद्दा राजू'। उसकी पत्नी थी सम्मक्का। इनकी दो पुत्रियाँ थी– 'नागुलम्मा' और 'सारक्का' और एक पुत्र

'जंपन्ना'।

गिरिजन, सभ्य समाज से दूर रहते हुए जंगल माँ की गोद में अपने आचार–व्यवहार में, अपनी संस्कृति में बिना किसी बाहरी हस्तक्षेप के स्वेच्छा से जीवन जीने के इच्छुक रहते हैं। कोसंबी जैसे इतिहासकारों का मानना है कि जहाँ–जहाँ भी उनमें असंतोष व्याप्त हुआ है वहाँ पर प्राय: शासकों द्वारा उन्हें सभ्य समाज में शामिल करने के प्रयास के प्रतिक्रिया स्वरूप ही हुआ है। उनके सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप कर उनके राज्य को सामंत राज्य बना उनसे लगान की वसूली और जंगल पर आधिपत्य कायम करना ही शासकों का ध्येय रहा है।

और यही बात मेड़ारम पर भी लागू हुई थी। जंगल के इस राज्य को जबरदस्ती सामंती राज्य बनाकर लगान वसूल किया जा रहा था। वर्षाभाव के कारण अकाल पीड़ित गिरिजन यह लगान देने में असमर्थ थे। इसलिए ही पगड़िद्दा राजू ने लगान न देने के लिए, विद्रोह करके अपने–आपको स्वतंत्र घोषित कर दिया था। कोई सामंती राज्य सर उठाये भला प्रतापरुद्र जैसा पराक्रमशाली सम्राट यह कैसे बरदाश्त कर सकता था। विद्रोह को कुचलने के लिए उसने अपने मंत्री युगंधर राव के नेतृत्व में एक बड़ी सेना भेजी। इस तरह युद्ध आरंभ हो गया। पगड़िद्दा राजू उनका बेटा जंपन्ना, उनकी बेटियाँ नागुलम्मा और सारक्का तथा दोनों दामादों कोंडई और गोविंदराज ने भी युद्ध में हिस्सा लिया। वारंगल से मेड़ारम के रास्ते 'संपेंगा वागू' नामक नाला पार करना पड़ता है। वागू का अर्थ नाले से है। उनका उद्देश्य यही रहा कि शत्रु किसी भी हालत में नाला न पार कर पाये। वीरता पूर्वक लड़ते रहे। उनका बेटा जंपन्ना वीरतापूर्वक लड़ते हुए इसी नाले में ढेर हो गया। उसके रक्त से नाले का पानी लाल–लाल हो गया। तब से इस नाले का नाम 'जंपन्ना वागू' के नाम जाना जाने लगा। पगड़िद्दा राजू, कोंडई, गोविंदराज और नागुलम्मा भी वीरता पूर्वक लड़ते हुए एक के बाद एक धराशाही हो गये। सारक्का ने भी शत्रुओं के दांत खट्टे कर दिये पर सम्राट की विशाल और सुशिक्षित सेना के सामने भला कब तक टिक पाती। वह भी ढेर हो गयी।

हार की खबर सम्मक्का के पास पहुँची। युद्ध की बागडोर उसने संभालने

का निश्चय किया। उसी समय प्रतापरुद्र के मंत्री युगंधर राव ने प्रस्ताव भेजा कि वह चाहे तो राजमहल के हरम में सभी सुख सुविधाओं के साथ रानी बनकर रह सकती है। पर उसने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। घोड़े पर सवार वह निकल पड़ी। उसने शत्रुओं की सेना का गाजर मूली की तरह सफाया करना आरंभ कर दिया। उसकी वीरता देखकर स्वयं युगंधर राव चकित था। परन्तु शत्रु के एक सिपाही ने धोखे से पीछे से उस पर वार किया। बुरी तरह घायल वह मेड़ारम से दो किलोमीटर दूर 'चिलकलागुट्टा' के जंगल में चली गयी। बाद में गिरिजनों ने उसके लिए सारा जंगल छान मारा पर वह नहीं मिली, मिले तो केवल उसके चूड़ियों के टुकड़े और कुमकुम की डिबिया।

दूसरे युद्धों में और इस युद्ध में विशेषता यह है कि इसमें सम्मक्का, सारक्का और नागुलम्मा जैसे नारियों ने हिस्सा लिया था और वीरतापूर्वक लड़ते हुए मारी गयी थीं।

उनकी मृत्यु के बाद गिरिजनों में और भी आक्रोश व्याप्त हो गया। उस आक्रोश को, उस असंतोष को शांत करने के लिए स्वयं सम्राट प्रतापरुद्र को वहाँ आना पड़ा। उसने अपनी ज्यादातती स्वीकार की। वीरगति प्राप्त लोगों की याद में दो साल में एक बार जातरा लगाने की घोषणा की।

इस तरह सम्मक्का और सारक्का की याद में मेड़ारम में उनकी प्रथा के अनुसार दो खम्भे गाड़े गये। एक खम्भा सारक्का और दूसरा सम्मक्का के स्मारक के रूप में। बाद में वहाँ चबूतरों का निर्माण किया गया।

मेले में आने वाले लोग पहले जंपन्ना वागू में स्नान करते हैं और बाद में इन चबूतरों के दर्शन के लिए आते हैं। कालक्रम में सम्मक्का और सारक्का को वन देवी का अवतार माना जाने लगा। यह किंवदंती प्रसिद्ध हो गयी कि रात में सम्मक्का सिंह पर और सारक्का हिरण पर बैठकर वन में विचरण करती हुई उनकी रक्षा करती हैं। कालक्रम में इस मेले में गिरिजनेतरों के जुड़ जाने से उन्होंने इनके रूपों की कल्पना की। ये रूप दुर्गा देवी के रूपों से मिलते-जुलते हैं। इसी से संबंधित फोटो मेले में मिल रहे थे। लोग श्रद्धा से इन्हें खरीदकर ले जा रहे थे।

परन्तु अभी भी गिरिजन इन रूपों में विश्वास नहीं करते हैं। उनके लिए तो सर्वस्व चबूतरों में स्मारक के रूप में गड़े हुए खम्भे ही हैं। 1940 में निजाम के विरुद्ध विद्रोह करके लड़ते हुए मारे जाने वाले कोमरम भीम का स्मारक भी आदिलाबाद जिले के जोड़नघाट में खम्भे के रूप में ही है। गिरिजन इसी खम्भे के सामने सर नवाकर शहीदों के प्रति अपनी श्रद्धांजली प्रगट करते हैं।

प्राय: गिरिजनों के देवी-देवता उनके लिए प्राण अर्पित करने वाले व्यक्ति ही रहे हैं। चाहे वे कोमरम भीम हों या सम्मक्का, सारक्का । पोशम्मा, मैसम्मा जैसे उनके देवता भी और कोई नहीं बल्कि उनके लिए प्राण त्याग करने वाले गणदेवता ही हैं। लगता है कालक्रम में बढ़ाइयों ने केवल लकड़ी के टुकड़ों के बजाय इन्हें छीलकर कुछ-कुछ मानवों का सा आकार दे दिया है।

सम्मक्का, सारक्का की कहानी, गिरिजन समाज में स्त्रियों की प्रमुखता को दर्शाती है। शादी के पश्चात् वे अपने ससुराल नहीं जाती हैं बल्कि मर्द स्वयं घर जमाई बनकर उनके यहाँ ही रहता है। गिरिजनो का वंश भी स्त्रियों के नाम से ही चलता है। यह स्त्री प्रधान समाज का उदाहरण है।

कहा जाता है कि घायल होकर जंगल में जाते वक्त सम्मक्का ने श्राप दिया था कि जल्द ही काकतीय वंश का नाश हो जायेगा और हुआ भी यही। इस घटना के पहले 1310 ई. में अलाउद्दीन खिलजी ने विशाल सेना के साथ इस पर आक्रमण किया था जिसमें हुई हार में फिरौती के तौर पर हर वर्ष एक बड़ी रकम देना काकतीय राजाओं ने स्वीकार किया था। पर अलाउद्दीन खिलजी की मौत के बाद प्रतापरुद्र ने यह फिरौती देना बंद कर दिया था। इसी कारण 1323 ई.में उसके उत्तराधिकारी मोहम्मद बिन तुगलक ने बड़ी भारी सेना के साथ इस पर आक्रमण किया। युद्ध में प्रताप रुद्र की हार हुई और वह बंदी बना लिया गया। दिल्ली ले जाते वक्त मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गयी।

गिरिजनों में यह विश्वास धर कर गया कि यह सम्मक्का के श्राप का ही परिणाम था। इसी कारण आज भी उसके प्रति उनमें असीम श्रद्धा विश्वास है।

मेले का आरंभ —

मेले का आरंभ कुमकुम की डिबिया के रूप में सारक्का को कन्नेपल्ली गांव से मेड़ारम में उसके चबूतरे तक लाने से होता है। इसी तरह चिलकलगुट्टा के जंगल से कुमकुम की डिबिया और चूड़ियाँ, सम्मक्का के रूप में उसके चबूतरे तक लायी जाती है। इसे लाने वाले कोया जाति के गिरिजन ही हैं और पुजारी ब्राह्मण ना होकर उसी जाति के होते हैं। बाद में यही कुमकुम तेलंगाना के दूसरे जगहों पर भरने वाले जातरों में भी भेजा जाता है और वहाँ पर भी मेला आरंभ होता है।

यहाँ पर पशुओं की बलि दी जाती है और मद्य तो पानी की तरह बहता है।

मेले में मद्य —

गिरिजनों में उत्सवों के समय मद्य पीने की प्रथा है। वहाँ प्राय: महुआ का शराब स्वयं बनाकर पीते हैं। देवी की पूजा भी मद्य अर्पण के द्वारा ही होती है।

उनकी इसी प्रथा के कारण यहाँ पर अंग्रेजी शराब की दुकानों की अनुमति दी गयी लगता है। जगह-जगह पर ये दुकानें थी। देशी शराब की दुकानें भी होंगी शायद, पर वे मेरी दृष्टि में नहीं आईं। देशी शराब के पैकेट और मिनरल वॉटर के पैकेट एक ही जैसे लगते हैं इसलिए कौन सा पैकेट पिया जा रहा है यह पता हीं नहीं चलता है। इसके अलावा यहाँ पर अवैध रूप से तैयार किया गया दारू न मिल रहा हो यह बात संभव नहीं है। इन अधिकारिक रूप से बेचे जाने वाले दारू से कहीं ज्यादा नहीं तो कम-से-कम, उसके बराबर तो अवेध रूप से तैयार किया गया दारू अंदर ही अंदर मिलता रहा होगा। दारू का यह अवैध धंधा एन.टी.रामाराव के मुख्यमंत्री रहने के समय आरंभ हुआ था। नक्सलवादियों के दबाव में आकर एन.टी.आर ने मद्यपान पर निषेध घोषित कर दिया था। उस वक्त आंध्र प्रदेश में जगह-जगह पर, मुख्य रूप से गांवों में अवैध रूप से दारू बनने लगा था। लोग अपने-अपने घरों के पिछवड़ों में, खेतों में, नदी-नालों के किनारे भट्टी लगाकर शराब बनाने लगे थे। मूंगफली बेचने वाले, भुट्टे भुनकर बेचने वाले तक अपनी-

अपनी टोकरियों में दारू के पैकेट रखकर बेचते थे। इसके बाद निषेध हटा दिया गया। पर यह अवैध धंधा, वैध धंधे के समानांतर चलता रहा। पहले मद्य की बिक्री कुछ मुट्ठी भर टेकेदारों के हाथ में थी परन्तु अवैध शराब के चलते इसका विकेंद्रीयकरण सा हो गया। कई लोगों का (प्राय: निचले तबके के लोगों का) यह जीविका का साधन सा बन गया है। हर गांव में मिरची भजिया के ठेले मिल जायेंगे। इनका धंधा प्राय: शाम में चार-साढ़े चार बजे से आरंभ होता है। इनका मुख्य धंधा भजियों के साथ-साथ मद्य की सप्लाई करना भी है। ठेले के पीछे एक बेंच पड़ी मिलेगी। लोग यही पर बैठकर पीते हैं। जहाँ पर इस तरह का ठेला दिखाई दिया समझो वहाँ पर मद्य मिलने की बहुत ही संभावना है। जो लोग बॉर वगैरह का खर्चा बरदाशत नहीं कर सकते हैं उनके लिए यह जगह बहुत ही उपयुक्त है। देशी के साथ ब्रांडी, विस्की भी यहाँ पर मिल जाती है।

मेले में और भी तरह-तरह की दुकानें थीं। पर मैं ढूंढ रहा था कुछ ऐसी दुकान जहाँ पर गिरिजन संस्कृति से संबंधित चीजें मिल सके। पर मुझे निराशा ही हाथ लगी। हर तरफ उपभोक्ता वस्तुओं से संबंधित दुकानें ही थीं।

हाथ देखकर भविष्य बताने वाला कोया (भील)—

मुझे एक जगह हस्तरेखा पढ़कर भविष्य बताने वाले दुकान पर एक कोया दिखलाई दिया। वह अपने पारंपरिक वेश-भूषा में था। कमर पर केवल लंगोट बंधे हुए। शेष सारा बदन नंगा। सर पर मोर पंखों का मुकुट, गले में रुद्राक्ष माला। कानों में चंद्राकार में पीतल के बड़े-बड़े कुंडल। दोनों बाहों में पीतल की पट्टियाँ। अनायास ही उसने मेरा मन आकर्षित कर लिया। बहुत दिन हुए किसी भील को इस तरह के अपने पारंपरिक भेष में देखकर। बचपन में भूत-भविष्य बताने के नाम पर ये जगह-जगह घूमते थे पर अब इनका आना बंद हो गया है। मुझे पामिस्ट्री हो या आस्ट्रॉलोजी किसी भी तरह की ज्योतिषी में बिल्कुल विश्वास नहीं है। फिर भी मैं उसके पास चला गया। मैं उससे बात करना चाहता था। मैंने अपना हाथ दिखलाया। मेरे भूत-भविष्य से संबंधित उसने कई बातें बताई जिसका मेरे यथार्थ

से कोई संबंध नहीं था। फिर भी मैं पूछता रहा और वह बताता रहा, यह भी जानते हुए कि जो कुछ वह बता रहा है वह सच नहीं हैं।

उसके सही बताने के बावजूद मुझमें एक तृप्ति थी, पारंपरिक वेश-भूषा वाले एक भील से मिलकर बातें करने की।

देवी को अपने वजन के बराबर सोना भेंट करना—

यहाँ पर मनौती के रूप में देवी माँ के नाम पर अपने वजन के बराबर सोना भेंट करने की प्रथा है। प्राय: लोग अपने बच्चों के वजन के बराबर सोना भेंट करने की मनौती मांगते हैं। आश्चर्य से मुँह मत फाड़िये। यह कोई असली सोना नहीं है। सोना यानी गुड़। गुड़ को ही यहाँ सोना माना जाता है। तराजू के एक पलड़े में पहले मनौती मांगने वाले व्यक्ति को बिठाया जाता है और दूसरी तरफ गुड़ रखा जाता है। फिर गुड़ का वजन कर उसकी कीमत वसूल की जाती है। लोग दर्शन के लिये जाते वक्त इसमें से थोड़ा गुड़ सम्मक्का और सारक्का के चबूतरे पर भेंट करते हैं और शेष सब बाँट देते हैं। कुछ लोग तो सारे परिवार के वजन के जितना गुड़ भेंट चढ़ाने की मनौती मांगते हैं।

पहले चबूतरे के पास इतना गुड़ डाल दिया जाता था कि लोगों का चलना मुश्किल हो जाता था। दर्शनार्थियों का पांव कीचड़ में धंसने की तरह गुड़ में धंस जाता था। सारा क्षेत्र गुड़ से ही भर जाता था। इससे बचने के लिए अब दोनों चबूतरों के चारों तरफ दीवार बना दिया गया है और उस पर ग्रील लगा दिया गया है। बाहर से ही लोग ग्रिल के अंदर अपने हिस्से का गुड़ डाल देते हैं।

देवी माँ के दर्शन के लिए क्यू का बहुत ही अच्छा इंतजाम किया गया है। हजारों लोग बिना किसी धक्कम-धक्के के आराम से दर्शन करके निकल जा सकते हैं।

इसी तरह जपन्ना वागू पर भी अब पुल बना दिया गया है। पहले ही बताया जा चुका है कि वारंगल की तरफ से मेड़ारम आने पर यह नाला पार करके आना पड़ता है। मेले में आने वाले, पहले इस नाले के पानी में स्नान करते हैं और

बाद में चबूतरे के दर्शन के लिए जाते हैं। हजारों लोगों के पानी में नहानें से नाले का पानी एकदम गंदला हो जाता था और तरह-तरह की बीमारी आने का खतरा बना रहता था। इसी कारण अब सरकार ने नहाने के लिए नलों का इंतजाम किया है। दोनों किनारों पर सीमेंट के बहुत ही चौड़े-चौड़े घाट बनाये गये हैं। इस पर अंग्रेजी के 'T' आकार के पाइप लाइन डाले गये हैं। एक-एक 'T' पर दोनों तरफ करीब 18-20 नल लगे हुए हैं। इस तरह के सैकड़ों टी। एक ही समय में हजारों लोग बिना किसी परेशानी के नहा सकते हैं। इन नलों में साफ पानी आता है। फिर भी लोगों में इसमें नहाने से संतृप्ति नहीं होती है। वे नाले में डुबकी लगाये बिना नहीं रहते हैं। लोगों का मानना है कि इस जंपन्ना वागू के पानी में नहाने से उनके सारे रोग दूर हो जाते हैं।

दूध छूटने के पहले ही पेट के लिए संघर्ष—

जैसे कि हर मेले में होता है यहाँ पर भी झूले वगैरह लगे हुए थे। बड़े-छोटे सभी इसमें झूलते हुए उसका आनंद उठा रहे थे। एक नट परिवार बांसों के सहारे तानकर बांधे रस्सी पर अपना करतब दिखा रहा था। ढोलक की थाप पर एक पांच-छ: साल की लड़की रस्सी पर चल रही थी कभी नंगे पांव तो कभी थाली पर। जहाँ सरकार एक ओर बच्चों की अनिवार्य शिक्षा का, बालश्रम पर निषेध का इतना ढोल पीट रही है वहीं पर यह लड़की उन्हें चिढ़ाती हुई दिखलाई दे रही थी। यही नहीं इस करतब से उसका आठ-नौ महीने का दूध पीता भाई भी नहीं बच सका था। उसकी माँ ने उसके कमर में एक रस्सी बांधकर उसे, लड़की के चलने वाले रस्सी पर बांधकर लटका दिया था। बच्चा अधर में लटका टुकुर-टुकुर निहार रहा था। लगा पेट के लिए उसका संघर्ष दूध छूटने से पहले ही आरंभ हो चुका है।

इस तरह मेले में घूमता रहा। तरह-तरह के लोगों से मिलता रहा। उनके जीवन में आये बदलावों को देखता रहा।

वापसी यात्रा—

जी तो कर रहा था कि और लोगों की तरह रात मैं भी यहीं पर बिताऊँ। सम्मक्का, सारक्का की इस पवित्र त्यागभूमि पर खुले आकाश के नीचे सोऊँ। हड्डियाँ तक को कंपा देने वाली सर्दी को महसूस करूँ। पर सोचने और उस पर अमल करने में बहुत अंतर होता है। वापस लौट पड़ा।

बस में बैठा सोच रहा था कि आखिर लोग इस तरह के जातरों में इतनी तादाद में क्यों आते हैं? इतने सारे नल लगाने और अधिकारियों की चेतावनियों के बावजूद जंपन्ना वागू के गंदले पानी में ही मटरगस्ती करते डुबकियाँ लगाते नहाना क्यों पसंद करते हैं ? छोटे-बड़े, बच्चे-बूढे, औरत-मरद सब, एक नहीं, दो नहीं, बल्कि लगातार तीन-तीन, चार-चार दिनों तक, रात में खुले आकाश के नीचे ठंड में ठिठुरते हुए भी सोना क्यों पसंद करते हैं? यही प्रश्न मुझे लगातार धुनते रहे।

लोगों का पारिवारिक जीवन टूटता चला जा रहा है। उनका सामूहिक जीवन भी नहीं रहा। सामाजिक जीवन का उनका गाना-बजाना, तीज-त्यौहार, नाच-गाना, अब नहीं रहा। अभिव्यक्ति का कोई माध्यम अब लोगों के पास नहीं है। सारी जिंदगी टी.वी. कार्यक्रमों में सिमटकर रह गयी है। इन प्रोग्रामों में भी उनका अपना कोई इन्वाल्वमेंट नहीं रहा बस टुकर-टुकर देखने के अलावा। लोग इस भौतिक जीवन और गलाकाट संस्कृति से ऊब से गये हैं। उसमें छटपटा रहे हैं। इससे बाहर आना चाहते हैं। खुली हवा में सांस लेना चाहते हैं और शायद यही कारण है कि निराडंबरता से दूर, प्रकृति की गोद में भरने वाले मेड़ारम जैसे जातरे की ओर खिंचे चले आते हैं।

इस तरह इतने कम समय में, इतने सारे अनुभवों के साथ मैं लौट रहा था जंपन्ना वागू में मटरगस्ती करते डुबकियाँ लगाते लोगों को छोड़कर, मैदान में अचानक कुकुरमुत्तों की तरह उभर आये हजारों-लाखों झोपड़पट्टियों को छोड़कर, लोगों के लिए बलिदान होने वालों की याद में मन से असीम श्रद्धा प्रगट करने वालों को छोड़कर, गर्द के एक विशाल गुबार को छोड़कर, उथल-पुथल होते

कोलाहल भरे एक संसार को छोड़कर, सभी सुख-सुविधाओं को छोड़ धरती को बिछौना और आकाश को चादर बनाकर सोने चले आये लोगों को छोड़कर, एक विशाल जन समुंदर को छोड़कर........।

***

3. क्या वहाँ वध स्थल पर मंदिर का निर्माण हुआ है?

(गुंटुर अमरावती यात्रा वृतंत्र)

जैसे ही 'गुंटुर' स्टेशन पास आ रहा था मुझे शिवा की याद आ गई। शिवा इसे पिछले आठ-दस साल से भूल नहीं पाया हूं। जब तब मेरे जेहन में आता ही रहता है।

आठ-दस साल पहले जब मैं एक काम से भिलाई जा रहा था तब नागपूर में ट्रेन बदलने के लिये मुझे उतरना पड़ा था। समय था और रात का भोजन भी करना था। स्टेशन से बाहर आ गया। स्टेशन की सीमा के बाद सड़क के उस पार आठ-दस होटल कतार में। एक होटल में चला गया। बाहर खुले में ही टेबल कुर्सियां डाली हुई थीं। एक कुर्सी पर जाकर बैठ गया। होटल में उस वक्त तक और कोई ग्राहक नहीं आया था। आर्डर लेने के लिये एक छोकरा मेरे पास आया और पूछा - 'क्या चाहिए'?

उसके पूछने के ढंग से मुझे हंसी आ गयी। मुझे लगा बिलकुल नया-नया आया है। मेरे पूछने पर उसने अपना नाम 'शिवा' बताया। इस नाम से ही मुझे संदेह हुआ। उत्तर भारत के प्राय: शिव, कृष्ण, सत्यनारायण आदि नाम दक्षिण में शिवा, कृष्णा, सत्यनारायणा हो जाते हैं। मुझे लगा हो न हो यह दक्षिण भारत का ही है और उसमें भी आंध्र प्रदेश का ही है।

गोल-मटोल भोला-भाला चेहरा। उम्र कोई ग्यारह वर्ष के करीब।

मैने पूछा-कौन सा गाँव है तेरा?

'गुंटुर' उसने जवाब दिया था।

मेरा अनुमान सही निकला। अब मैने उससे तेलुगु में पूछना आरंभ कर दिया। उसने बताया कि वह बिना माँ-बाप का है। गुंटुर रेल्वे प्लेटफार्म पर रहता

था। पुलिस वालों ने उसे पकड़ कर हॉस्टल में भर्ती किया अनिवार्य विद्या विधान के तहत। वहाँ पर वह पढ़ता रहा। ग्यारह वर्ष की उम्र होते ही उसे फिर से बाहर कर दिया। वहाँ पर होटल वगैरह में नौकरी करना चाहा तो किसी ने नौकरी नहीं दी। शायद बाल कर्मिक निषेध की वजह से। उस समय आंध्र प्रदेश में बाल-कर्मिक निषेध अभियान जोरों पर चल रहा था। इस डर से कोई भी बच्चों को नौकरी पर नहीं रख रहा था। गुंटुर स्टेशन पर फिर से भीख मांगने लगा। वहां से एक ट्रेन में बैठकर नागपूर में उतरा। यहाँ पर भी तीन चार दिन भीख मांगा। कुछ खाने के लिये होटल में आया तो, होटल वाले को नौकर की जरूरत थी। उसने उसे बीस रुपये रोज के हिसाब से नौकरी पर रख लिया। सुबह-शाम खाना मुफ्त। उससे पूछा कि सोता कहाँ है.... तो एक बेंच की तरफ इशारा करके बतलाया। होटल बंद होने पर होटल के सामने पड़े बेंच पर सोता था। मैंने पूछा खाना तो मुफ्त है फिर रुपयों का क्या करता है तो बोला-'सेठ जो बीस रुपये देता है उसे रोज कुछ-न-कुछ लेकर खा लेता हूं।'

मैंने कहा-'बचाकर रख सकता है न....'

वह बोला- 'कहाँ रखूं। रखने की जगह ही नहीं है।'

सेठ के पास वह रख भी नहीं सकता था। किसी दिन सेठ को गुस्सा आकर निकल जाने को कहेगा तो वह शायद पैसे भी न दे यह सोचकर। लोगों के स्वभाव को समझने की उसे इस कच्ची उम्र में ही कितनी अकल आ गयी थी। मन खट्टा हो गया था।

बिल देने के बाद मैंने उसे पांच रुपया दिया। पर मुझे मालूम है कि वह पांच रुपया भी उसे दिन खर्च ही करना पड़ा होगा।

यह थी शिवा की कहानी। एक तरफ सरकार बाल कार्मिक पर निषेध लगाती है, दूसरी तरफ उन्हें सहारा भी नहीं देती है। अब यह भोला भाला, गोल-मटोल चेहरे वाला शिवा न जाने किस हालत में हो.. नजाने कहाँ हो। हो सकता है किसी गिरोह के हाथ में पड़ गया हो। हो सकता है कहीं स्मलिंग का माल सप्लाई

कर रहा हो।.... हो सकता हो कहीं ड्रग सप्लाई कर रहा हो।.... हो सकता है एक नम्बर का पियक्कड़ आवारा, गुंडा बन गया हो।..... हो सकता है कहीं हफ्ता वसूली कर रहा हो।....... गुंटुर का नाम याद आते ही सबसे पहले मुझे शिवा की याद आती है।

हम छः लोग थे गुंटुर जाने वाले। हमारे एक दोस्त के बेटे की शादी थी। साथ में मेरा बेटा विशाल भी था। रात के करीब एक बजे हमारी गाड़ी विजयवाड़ा स्टेशन पर पहुंची। बहुत भव्य और चमक-दमक से भरा हुआ था। चाय-चाय, कॉफ़ी-कॉफ़ी की हांक से गूँज रहा था। विजयवाड़ा कॉफी के लिये बहुत प्रसिद्ध है। हमारा एक साथी जो इसी एरिया से संबंधित है हमारे लिये कॉफी ले आया। सचमुच कॉफी बहुत अच्छी थी। पीकर तबियत मस्त हो गयी।

लोग जैसा आगरा जाने पर वहाँ का पेठा खरीदना नहीं भूलते हैं, नासिक जाने पर चिऊड़ा, बनारस जाने पर पेड़ा, वैसे विजयवाड़ा से गुजरते वक्त प्लेटफार्म पर काफी पीना नहीं भूलते हैं। विजयवाड़ा का पुराना नाम बेजवाड़ा है। अभी भी बहुत लोग इसे बेजवाड़ा के नाम से ही जानते हैं।

विजयवाड़ा के बाद ही अगला स्टेशन है गुंटुर। विजयवाड़ा और गुंटुर दोनों प्रमुख नगर हैं। इन दोनों के बीच प्रकाशम बैरेज। धन्-धन् करती हमारी ट्रेन प्रकाशम बैरेज पर बंधे पुल पर से गुजर रही थी। प्रकाशम बैरेज के इस तरफ विजयवाड़ा और उस तरफ गुंटुर। विजयवाड़ा आंध्रा का एक महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर है। प्रकाशम बैरेज ने इस शहर की सुंदरता में चार चाँद लगा दिया है। कृष्णा नदी के झील ने शहर को बहुत ही निखारा है और इसे एक दार्शनिक स्थल बना दिया है। इससे निकले तीन केनाल विजयवाड़ा शहर से ही होते हुए निकलते हैं। इनसे करीब बारह लाख एकड़ जमीन की सिंचाईं होती है। इसने अपने अधीन क्षेत्र को सस्यश्यामलम बना दिया है। यह दक्षिण भारत का पहला बड़ा बांध है।

कृष्णा नदी पर यह बांध बनाने का विचार 1798 में अंग्रेजी प्रशासन को आया था। पर इसे ईस्टइंडिया कंपनी के बोर्ड ऑफ डैरेक्टर की अनुमति मिली

1850 में, मेजर कॉटन के प्रयासों से। बैरेज का काम 1852 में आरंभ हुआ और 1855 में पूरा हुआ। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद आंध्र प्रदेश सरकार ने इस पर एक गोल पुल का निर्माण किया और आंध्र प्रदेश के प्रथम मुख्यमंत्री टंगुटूरी प्रकाशम पंतुलु के नाम पर इसे प्रकाशम बैरेज का नाम दिया।

धन्-धन् करती ट्रेन प्रकाशम बैरेज पर बंधे पुल पर से गुजर रही थी। ब्रिज पर सपोर्ट के लिये आड़े-तिरछे एंगुलर। लबालब भरे पानी में विद्युत दीपों की परछाईंयां। बहुत ही मनोरम दृश्य।....

इस प्रकाशम बैरेज के लिये आज भी सर कॉटन को याद किया जाता है। एन.टी.रामाराव के मुख्यमंत्री काल में हैदराबाद में हुसैन सागर के किनारे आंध्र प्रदेश के महापुरुषों की लगाई तीस मूर्तियों में सर कॉटन की मूर्ति भी है। एक अंग्रेजी पालक के प्रति इतनी श्रद्धा विरले ही है।

हमारी ट्रेन रात के दो बजे के करीब गुंटुर स्टेशन पर रूकी। हमारे मित्र राधाकृष्णा का बेटा हमें रिसिव करने आया था। हमें म्युनिसिपल गेस्ट हाऊस में रखा गया। हम सोने की तैयारी में लग गये पर हमारा बेटा विशाल रात में तीन बजे नहाकर बाथरूम से निकला। आजकल के बच्चों की दिनचर्या ही बदल गयी है। विशाल दिल्ली के 'दिल्ली स्कूल ऑफ प्लानिंग एंड आर्किटेक' में अरबन प्लानिंग में पी.जी. कर रहा है। वह बताता है कि हॉस्टल परिसर में रात भर पहल-पहल बनी रहती है। जो भी होम वर्क वगैरह करना होता है वह रात में ही करते रहते हैं। जिरॉक्स सेंटर, स्पिरल बाइंडिंग सेंटर वगैरहा रात में में ही खुलते हैं और सारी रात व्यस्त रहते हैं। इस तरह रातों में उन्हें जागने की आदत हो गयी है। विशाल जब भी घर आता है, रात में जब भी हम उठते हैं उसे जागता हुआ पाते हैं। रात में दो-ढाई बजे उसे नहाता हुआ पाते हैं।

इस लिए रात में तीन बजे वह नहाकर निकला तो मुझे कोई आश्चर्य नहीं हुआ। पर मेरे साथियों को आश्चर्य हुआ। वह संतोष के साथ शादी की तैयारी में चला गया और हम सोने के उपक्रम में लग गये।

राधाकृष्ण के साथ हमारी परिवारिक मित्रता है। मेरे और उसके विचारों में जमीन-आसमान का अंतर है। फिर भी हम दोनों में मित्रता है। हम दोनों की शादी भी लगभग एक वक्त ही हुई थी। दोनों की पत्नियों में भी उस वक्त से ही घनिष्ठता है। उसके तीन बच्चे हैं। दो लड़कियां और एक लड़का। मेरे भी तीन बच्चे हैं दो लड़कियां और एक लड़का। दोनों की दोनों लड़कियां बड़ी और लड़के छोटे। बच्चे भी सभी क्रमशः हम उम्र। बच्चों में भी बहुत ही घनिष्टता है।

गेस्ट हॉऊस के पास ही चौरस्ते पर सांसद रायपाटी सांबाशिवाराव के स्वागतर्थ बैनर बंधा हुआ है। याद आया करीमनगर जिले में जगत्याल के पास जो रेल्वे का ब्रिज बन रहा था उसके लिये हमारी कंपनी से ही सिमेंट सप्लाई हुआ था। गुणवत्ता से संबंधित एक कंप्लेन अटैंड करने गया था। वहां पर पता चला कि रेल्वे का जो नया लाइन डाल रहे है उसका सारा कंट्रैक्ट रायपाटी सांबाशिवा राव का है। उसने अलग-अलग जगह पर अलग-अलग लोगों को सब-कंट्रैक्ट दे रखा है। इसके अलावा उसका अपना टोबैको कंपनी जैसे अन्य कारोबार भी है। ले देकर वह बहुत ही प्रबल आदमी है।

दूसरी तरफ भी एक बैनर कन्नालक्ष्मीनारायण के स्वागातार्थ में। वह यहाँ का विधायक है। आंध्र प्रदेश का गृहनिर्माण मंत्री भी। रायपाटी सांबशिवाराव और कन्नालक्ष्मीनारायण हालांकि दोनों ही कांग्रेस पार्टी से है परंतु उनमें बिलकुल नहीं जमता है। वे दोनों एक दूसरे के जन्मजात शत्रु हैं। कन्नालक्ष्मीनारायण का बेटा कन्नानागराज गुंटुर कॉर्पोरेशन का मेयर है।

अगर इसी तरह पीछे चले जाये तो सारे आंध्र प्रदेश में ही अंग्रेजों द्वारा पालित क्षेत्रों में कृष्णा जिला ही सबसे पुराना है। इसे पहले मछलीपटनम जिले के नाम से जाना जाता था। सन 1611 से लेकर 1641 तक उनका हेडक्वार्टर मछली पटनम ही था। 1641 में उन्होंने मद्रास को अपना हेडक्वार्टर बनाया।..... 1859 में गुंटुर जिले को भंग करके इसके कुछ क्षेत्रों को मिलाकर कृष्णा नदी के नाम पर इसे कृष्णा जिले का नाम दिया गया। 1904 में कृष्णा से अलग करके गुंटुर

को फिर से जिला बनाया गया।

तिरुनाल्लु—

तिरुनाल्लु का मतलब उत्सव या तमाशे से है। शिवरात्रि के दिन रतजगा होता है। उस दिन हजारों की संख्या में लोग कृष्णा नदी में स्नान करने आते हैं। सारा दिन उपवास रखते हैं। रात भर जागते हैं। पहले लोग शंकर भगवान के चित्रपट के सामने दीप जलाकर उसे देखते हुए ही रात काट देते थे या फिर पास में जो शिव का मंदिर होता था वहाँ जाकर रात भर भजन करते थे। धीरे-धीरे उसने परिवर्तन आता चला गया। उस रात सिनेमा घरों में विशेष शो चलते हैं। रात में नौ से बारह, बारह से तीन, तीन से छः जैसे शो का आयोजन किया जाता है ताकि लोग रात भर सिनेमा देखते हुए समय व्यतीत कर सकें। इसके अलावा तिरुनाल्लु का आयोजन किया जाता है। पहले इसका आयोजन भजन या भक्तिगीतों के रूप में होता था। बाद में रिकार्डिंग, डांस वगैरह आ गये। धीरे-धीरे उत्तेजित डांसों का रूप ले लिया। इसके लिये पेशेवर लड़कियों को लाया जाता है। रात बीतने के साथ-साथ डॉसरों के बदन के कपड़े भी धीरे-धीरे निकलने आरंभ हो जाते हैं। बाद में तो सारे कपड़े निकल जाते हैं। कुछ जगहों पर तो डांसर सारे कपड़े उतारकर स्टेज पर ही नाचती है। हजारों की भीड़ इसका आनन्द लेती है। कुछ जगह पर कंट्रैक्ट के मुताबिक वे ऐसा करती हैं तो कुछ जगह जबरदस्ती उन्हें ऐसा करने के लिये मजबूर किया जाता है।

प्रायः जमीदार लोग अपने-अपने क्षेत्र में इस तरह का आयोजन करते हैं। वे इसे अपनी प्रतिष्ठा का विषय मानते हैं। उनमें आपस में प्रतिस्पर्धा होती है। उनका प्रयत्न रहता है कि अधिक से अधिक भीड़ उनके प्रोग्राम में जुटे। जिस प्रोग्राम में जितनी ज्यादा नाचने वाली होंगी, जितनी ज्यादा उत्तेजक नाच करेंगी, जितने ज्यादा कपड़े उतारेंगी, उसमें उतना ही ज्यादा भीड़ जुटती है।

इस पर रोक लगाने का प्रशासन ने भी बहुत प्रयत्न किया पर असफल

रही। कुछ जगहों पर तो नाचने वालियों ने ही प्रतिवाद किया। वे कहती हैं कि अगर वे ऐसा नहीं करेंगी तो कौन उन्हें नचवाने के लिये ले जायेगा। और अगर नहीं ले जाते हैं तो उनका पेट कैसे भरेगा। वे अपने बच्चों का पेट कैसे भर पायेंगी।...

यह है ग़रीबी का नंगा नाच।

गुंटुर हो या परिसर प्रांतों में, पुराने जगहों पर गलियों के नाम प्रायः रामकृष्णावारी विधि, रामांजनेयावारी वीधि, यानी की रामकृष्णा जी की गली, रामांजनेया जी की गली, आदि होते हैं। यह प्रायः ब्राह्मण पंडितों के नाम पर होते हैं।

अंबाड़ा की भाजी को तेलुगु में गोंगुरा कहा जाता है। सारा आंध्र और उसमें विशेष रूप से गुंटुर इस गोंगुरा की चटनी के लिये बहुत प्रसिद्ध है। बंगाल में जैसे माछी के झोल के बिना भोजन कोई भोजन नहीं होता है वैसे ही यहाँ पर बिना गोंगुरा की चटनी का भोजन कोई भोजन नहीं होता है। तेलुगु में एक कहावत है- कोड़िते पुलि ने कोट्टालि, तिंटे गोंगुरा तिनाली, यानी मारना है तो शेर को मारो, खाना है तो गोंगुरा खाओ।

राधाकृष्णा की बेटी उदया की शादी यहाँ के टोबैको बोर्ड के फंक्शन हॉल में थी। उदया मेरी दूसरी बेटी श्वेता की हम उम्र है। जब मैं लेटा होता था, बचपन में वह मेरी छाती पर बैठ अपनी तुतलाती भाषा में बातें करती थी। आज वह इतनी बड़ी हो गयी है।

शादी के बाद हम वापस गेस्ट हाऊस आ गये। मुझे अमरावती में कहानी पर एक शिविर में शामिल होना था। मेरे सहकर्मी वापस जाने की तैयारी में लग गये। मैं सीधा गुंटुर में ही श्रीनिवास कॉलनी में रूक्मिनी के घर चला गया। रूक्मिनी तेलुगु की एक प्रमुख कथा लेखिका है। पेशे से वह क्रिमिनल लॉयर है। स्त्रियों के पक्ष में अदालत में बहस करते वक्त वह बड़े-बड़े वकीलों के छक्के छुड़ा देती है।

कुछ इंतजार करने के बाद वहाँ पर अल्लम राजय्या और तुम्मेटी रघोत्तम रेड्डी भी आ गये। अल्लमराजय्या मेरे साथ ही मंचेरियाल सिमेंट कंपनी में पर्सनल मैनेजर के तौर पर काम करते हैं। तेलुगु के जाने माने कथाकार। तेलंगाना का सारा

कथा साहित्य आंदोलन का साहित्य ही है, और अल्लम राजय्या ने इसे एक नया मोड़ दिया है। आफ्रिकन साहित्य में जो नाम गूगी का है, तेलुगु साहित्य में वह नाम अल्लम राजय्या का कहा जा सकता है। कुछ व्यस्तता के चलते वह शादी में नहीं आ पाया था। उससे यहीं पर मुलाकात हुई। और तुम्मेटीरघोत्तम रेड्डी भी मंचेरियाल के पास गोदावरी खनि से ही है। साहित्य के प्रति समर्पित। यह भी तेलुगु का एक समर्थ कथाकार। लेखन में उसने कभी भी समझौता नहीं किया है।

शाम में घूमने निकले तो विज्ञान कॉलेज का भव्य इमारत दिखलाई दिया। अंदर विद्यार्थियों की चहल-पहल। यह चहल-पहल कांसन्ट्रेशन कैंपों में रहने वालों की चहल-पहल या सेंट्रल जेल में कैदियों की चहल-पहल सी लगी। नारायण कॉलेज, चैतन्या कॉलेज, आदि नाम से और भी इंटरमीडियेट विद्यार्थियों के कांसनट्रेशन कैंप गुंटुर, तेनाली, विजयवाड़ा, हैदराबाद आदि जगहों पर भी हैं। एस.एस.सी.(दसवीं कक्षा) के परीक्षा के बाद से इन कॉलेजों का शिकार आरंभ हो जाता है। आंध्र प्रदेश में सब स्कूलों के पास, सब परीक्षा केंद्रों के पास विद्यार्थियों का शिकार करने के लिये अपना जाल फेंकते हैं। अपने कॉलेज से संबंधित पांप्लेट बांटते हैं। इनके कई एजेंट होते हैं। वे कार में घूमते हुए विद्यार्थियों का पता लेकर उनके घर पहुंच जाते हैं और अपने कॉलेज में भर्ती होने के लिये उनका ब्रेनवाश करते हैं। अखबारों में आये दिन पूरे-पूरे पेजों का विज्ञापन देते हैं। टी.वी. पर लगातार विज्ञापन देते रहते हैं।

ये इंटरमीडियट के साथ-साथ एमसेट (इंजीनियरिंग, एग्रीकल्चर, मेडिसन, कॉमन ऐंट्रेंस टेस्ट) और आई आई टी प्रवेश परीक्षा आदि का भी कोचिंग देते हैं। इनका वार्षिक फीस पचास-साठ हजार रुपये से कम नहीं होता है। इस तरह दो वर्ष का इंटरमीडियट का फीस एक लाख से कहीं ज्यादा पड़ जाता है। माँ-बाप अपने बच्चों के भविष्य के लिये इन रुपयों की परवाह नहीं करते हैं। ये विद्या संस्थान इंटरमीडियट के बाद एक साल का लांगटर्म कोर्स और इंटरमीडियट परीक्षा के बाद एंट्रेंस परीक्षा होने तक एक दो महीनों का शार्टटर्म कोर्स भी चलाते

हैं। इनकी फीस भी हजारों में होती हैं।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है ये संस्थान कांसनट्रेशन कैंपों से कम नहीं होते हैं। एक बार विद्यार्थी इसमें भरती हुआ तो समझो दो साल के लिये जेल में चला गया। बस कभी-कभार पे रोल में आने की तरह घर जाते हैं। यहाँ आकर विद्यार्थी बाहर की दुनिया से पूरी तरह कट जाता है। बस पढ़ाई-पढ़ाई-पढ़ाई। सुबह चार-पांच बजे से रात के ग्यारह-बारह बजे तक किसी न किसी रूप में पढ़ाई जारी रहती है। बस नास्ता, लंच और रात्रि भोजन के लिये कुछ वक्त छोड़कर। पर यह सब भी हड़बड़ी में।

मेरी भांजी यहां पर विज्ञान में पढ़ रही है। उससे मिलने का दिल चाहा। पर परमिशन नहीं मिला। सप्ताह में एक दिन ही विद्यार्थियों से मिला जा सकता है। वह भी केवल आथोराइज्ड परसन ही। इतनी दूर आकर उससे न मिल पाने का दुःख था।

अपने विद्यार्थियों को अच्छे रैंक दिलाने के लिये ये कारपोरेट कॉलेज, विद्यार्थियों को मशीनों मे बदल देने में कोई कसर नहीं छोड़ते हैं। इनके पास पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या हजारों में होती है। दसवीं के बाद हर माँ-बाप का, हर विद्यार्थी का एक ही मकसद, एक ही आशय होता है वह है इन कारपोरेट कॉलेजों में प्रवेश लेने का।

ऐसे हजारों विद्यार्थी रहते हैं जिनमें पढ़ने की सामर्थ्यता नहीं होती है पर वे भी इंजीनियरिंग कॉलेज या मेडिसन में सीट पाने के लालच में इन कॉलेजों में भर्ती हो जाते हैं, पर सफल न हो हीनता के शिकार हो जाते हैं। वापस आकर अपने शहर में ही बी.ए., बी.काम. जैसे कोर्स करने लगते हैं या फिर पढ़ाई छोड़ देते हैं। हज़ारों की संख्या में भर्ती हुए विद्यार्थियों में कुछ का रैंक आना लाजिमी है। इन्हीं लोगों को हाईलाईट करते हुए वे कारपोरेट संस्थान विज्ञापन देते रहते हैं।

शायद इंटिरमीडियट कोर्स पर इतना रुपया खर्च करके इतनी संख्या में पढ़ने वाले विद्यार्थी भारत के और किसी राज्य में नहीं मिलेंगे।

हमारा एक रिश्तेदार शिक्षक है। वह घर पर पहले कोचिंग क्लास चलाता था। उसका एक विद्यार्थी एमसेट में स्टेट टॉपर आ गया था। एक कॉरपोरेट कोचिंग इंस्टीट्यूट वाले ने उसे रुपये देकर अपने ही इंस्टीट्यूट में कोचिंग लिये जैसा उससे कागजपर्ची पर हस्ताक्षर करवा लिया और फिर उसके फोटो के साथ विज्ञापन देना आरंभ कर दिया। हजारों विद्यार्थी भर्ती होने लगे। इस तरह कॉरपोरेट संस्थान के लोग अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये आये दिन इस तरह के हथकंडे अपनाते रहते हैं। आज ये करोड़ों में खेल रहे हैं।

इनकी पढ़ाई से तंग आकर जब-तब विद्यार्थियों की आत्महत्याओं की खबर आती रहती है। कुछ दिन हो हल्ला होता है और फिर सब कुछ पहले की तरह ही सामान्य गति से चलने लगता है। कई विद्यार्थी कोर्स पूरा होने तक सनकी बनकर निकलते हैं। कई स्वास्थ्य की समस्या के चलते जिंदगी भर तकलीफ झेलते रहते हैं। पर इनका कोई रिकार्ड नहीं होता है। रिकॉर्ड तो केवल मुट्ठी भर उन लोगों का होता है जो रैंक लाते हैं।

दूसरे दिन सुबह हम अमरावती के लिये रवाना हुए। अमरावती, गुंटुर जिले में ही है और यहाँ से करीब पच्चीस किलोमीटर की दूरी पर है। यह आंध्र प्रदेश के प्रमुख दार्शनिक स्थलों में से एक है। यह प्रमुख बौद्ध विहार रहा है। बचपन में हम इतिहास में धान्यकटक का नाम पढ़ते थे। यह जानकर कि अमरावती का पुराना नाम धान्यकटक ही है, हमारी जिज्ञासा इस क्षेत्र के प्रति और भी बढ़ गयी।

हमारा शिविर यहाँ के एक धर्मशाला में था। धर्मशाला का जो रूप होना चाहिए वह उसका हू-ब-हू प्रतिनिधित्व कर रहा था। खैर हमें अपने शिविर से मतलब था। शिविर का सारा आयोजन रुक्मिनी के पति सी.एस.आर.प्रसाद ने किया था। ये गुंटुर में एक कॉलेज में प्रिंसिपल हैं, साहित्य में रूचि रखते हैं। एक अच्छे समालोचक हैं।

इस तरह का यह तीसरा शिविर था। इसके पहले दो शिविर लोपुड़ी (पूर्व गोदावरी) और काकीनाड़ा में लग चुके थे। इन शिविरों का उद्देश्य नये लेखकों का

मार्ग दर्शन कर सही मायने में कथा लेखक तैयार करना था। इसमें लेखक के स्वयं के द्वारा कहानी पाठन के बाद उस पर चर्चा करना, उसके विभिन्न आयामों पर दृष्टि डालना, उसमें खामियों को इंगित करना, उसे बेहतर रूप में और किस तरह प्रस्तुत किया जा सकता है बताना, आदि सभी कुछ शामिल था। यह सब बहुत ही अनौपचारिक माहौल में हुआ। इन नये लेखकों के साथ प्रतिष्ठित लेखकों ने भी अपनी कहानियों का पाठन किया। उन पर विचार-विमर्श हुआ। इस तरह यह शिविर बहुत ही सफल रहा। इस शिविर में विमर्शकों, समीक्षकों, अकादमी के विद्वानों को न लेकर केवल कथा साहित्य के सृजनात्मक लेखकों को ही शामिल करने की सतर्कता बरती गयी थी। भविष्य में भी इस तरह के शिविर को जारी रखने का निर्णय लिया गया।

कृष्णा और गोदावरी के बीच का क्षेत्र ईश्वी पूर्व दूसरी शताब्दी से ईश्वी सन् तीसरी शताबदी तक बौद्धों का प्रमुख क्षेत्र रहा है। कृष्णा के तट पर अमरावती भी उनमें से एक है। जैसा कि पहले बताया जा चुका है, इसका पुराना नाम धान्यकटक है। पास ही धरनीकोटा है। यह शातवाहनों की राजधानी रही है। शातवाहनों का काल मौर्य साम्राज्य के पतन के बाद ईसा पूर्व दूसरी सदी से ईश्वी सन् तीसरी सदी तक रहा है।

शातवाहनों के बाद यहाँ पर पल्लवों का पालन रहा है। बाद में चालुक्य और चोल वंशों ने इस कृष्णा घाटी पर शासन किया। 12वीं शताब्दी तक आते-आते यह काकतियों के अधीन चला गया।

बौद्ध स्तूप का निर्माण अशोक के काल में आरंभ हुआ माना जाता है। हाल ही में हुई खुदाई में अशोक स्तंभों के पाये गये अवशेषों से इसका पता चलता है। यह मौर्य कला का दक्षिण भारत में पहला उदाहरण है। बाद के कालों में बौद्ध मत के पतन के साथ ही इस स्तूप पर से लोगों का ध्यान हटता चला गया और यह ईंट, पत्थरों और मिट्टी के ढेरों से दब सा गया। श्रीलंका में हुई खुदाई से प्राप्त ब्योरों से पता चलता है कि ईसा की चौदवी शताब्दी में इसकी मरम्मत की गयी पर बाद

में इसे फिर से भुला दिया गया।

1796 में कर्नल मैकेनजी ने दो बार यहाँ आकर इसके अवशेषों का ड्राईंग और स्केच तैयार किया। सर वॉल्टर स्मित, रॉबर्ट सिवेल, जेम्स बर्गस, अलेक्जेंडर जैसे लोगों ने इसकी खुदाई करवायी और मुख्य स्तूप के अलंकरणों से संबंधित अवशेषों को बाहर निकला। स्तूप के छत की नक्कासी, आधार पर की उभड़ी हुई नक्काशी, झालर सब सांची के स्तूप से मिलते-जुलते हैं। सांची के स्तूप की तरह यह स्तूप भी उग्र हाथी को बुद्ध द्वारा शांत करने वाली जैसी जातक कथाओं, बुद्ध के जीवन और उनके उपदेशों से संबंधित कलाकृतियों से सुसज्जित हैं। 95फीट की ऊँचाई वाले स्तूप का निर्माण ईंटों से किया गया है। इसका निर्माण आचार्य नागर्जुन ने करवाया था। दक्षिण भारत का सबसे बड़ा बौद्ध स्तूप है। अमरावती का यह स्तूप वज्रयान के कालचक्र उपदेशों से संबंधित है। हमने इतिहास में पढ़ा था कि बौद्ध मत बाद में दो शाखाओं में बंट गया था। एक हीनयान, दूसरा महायान। वज्रयान ग्रंथों में मुक्ति पाने के इन दो मार्गो के अलावा तीसरा मार्ग वज्रयान को बताया गया है। कुछ विद्वानों का मानना है कि यह महायान से ही अलग हुई प्रशाखा है। वज्रयान परंपरा के अनुसार बौद्ध मत में तीन मुख्य घटक हुए हैं। यह तीसरा घटक ही वज्रयान है जो बुद्ध के ज्ञानोदय के सोलह वर्ष बाद धान्यकटक में घटित हुआ।

2006 में यहाँ पर बौद्धों का विश्व सम्मेलन हुआ था। माना जाता है कि 500 ईसा पूर्व बुद्ध ने यहाँ उपदेश दिया था। उस वक्त यहाँ के राजा संभाला और उसके अनुचर गणों ने भी दीक्षा ली थी। बुद्ध ने यहाँ पर कालचक्र अनुष्ठान का भी आयोजन किया था। तिब्बत में आज भी इस कालचक्र का अभ्यास किया जाता है। इसी कारण इस सम्मेलन में दलाईलामा ने हिस्सा लिया था और कालचक्र का आयोजन कर दीक्षा दी थी।

अमरेश्वर मंदिर, क्या वध स्थल पर बना है ?

अमरावती बौद्ध विहार के साथ-साथ अमरेश्वर भगवान के मंदिर के लिये भी प्रसिद्ध है। यह मंदिर कृष्णा नदी के ठीक किनारे बना हुआ है। इतने किनारे बने रहने के बावजूद नदी में बाढ़ आने पर भी कहा जाता है कि यह डूबता नहीं है। इस स्थान पर नदी का बहाव उत्तर से दक्षिण की तरफ मुड़ जाता है और यह इस स्थान की पवित्रता का सूचक है। इसी कारण इस मंदिर का महत्व बहुत बढ़ गया है।

यहाँ का शिवलिंग सफेद संगमरमर से बना हुआ है और इसकी ऊँचाई पंद्रह फुट की है। भगवान शंकर की यहाँ अमरेश्वर के रूप पूजा की जाती है। इसी कारण इस जगह का नाम अमरावती पड़ा है।

कुछ लोगों का मानना है कि पहले यह बौद्ध मंदिर था। उसे तोड़कर उस पर यह मंदिर बनाया गया है। इस बात का प्रमाण है मंदिर का आधार। यह बौद्ध मंदिर के पत्थर के चौकोर पीठों पर बना हुआ है।

वैसे तो रोज हम धरमशाला के बाथरूम में ही स्नान करते थे परंतु चौथे व अंतिम दिन हमने निश्चय किया कि स्नान नदी मे ही करेंगे। रास्ता मंदिर के प्रांगण से ही था। नदी में सैकड़ों लोग स्नान कर रहे थे। पानी बहुत मटमैला हो गया था। हम लोग नाव में दूसरे किनारे चले गये। वहाँ पर पानी बहुत ही स्वच्छ और ठंडा था। तबीयत मस्त हो गयी। डुबकी लगा-लगाकर हमने स्नान का मजा लिया।

नाव खेने वाले से मैने उनका गांव कहाँ है पूछा। उसने हाथ से इशारा करके बताया कि वहाँ से दो किलोमीटर दूरी पर है। हम नदी के जिस तरफ थे उसी तरफ था यह गाँव। उनका गाँव चारों तरफ पानी से घिरा हुआ था। इस तरह पानी से घिरे रहने वाले प्रदेश को ये लोग स्थानीय भाषा में लंका कहते हैं। बाढ़ आने पर इनके डूबने का खतरा हमेशा बना रहता है। लंका कहने से मुझे अचानक श्री लंका की याद आ गयी। रामायण काल में इसे लंका ही कहते थे। यह भी तो पानी से चारों तरफ घिरा हुआ है। शायद इसी कारण इसका नाम लंका पड़ा हो।

हम नाव से फिर वापस आ गये। मंदिर के सामने दर्शन के लिये लंबी कतार। दर्शन के लिये हममें से कोई उत्सुक नहीं था। मंदिर के सामने ही तीन-चार झोपड़ी नुमा होटल। वहीं पर हमने नास्ता किया। वहीं पर एक स्थानीय व्यक्ति ने इस मंदिर से संबंधित थर्रा देने वाली एक किंवदंती से अवगत कराया। उसने बताया कि अंग्रेजों के पहले यहाँ पर वासी रेड्डी वेंकटाद्री नायडु का पालन था। उसने एक हजार गिरिजनों का वध करवा दिया था। उस उत्तेजना को शांत करने के लिये उसने उसी स्थान पर इस मंदिर का निर्माण करवाया था।

मुझमें ईश्वर के प्रति न तो कोई श्रद्धा-भक्ति है और न ही कोई विश्वास। फिर भी मंदिर देखने की उत्सुकता थी। पर बौद्ध मंदिर को तोड़कर उस पर यह मंदिर बनाने और गिरिजनों का वध करके उसी स्थान पर इस मंदिर के निर्माण की बात जान थोड़ी बहुत जो उत्सुकता थी वह भी समाप्त हो गयी।

होटल से थोड़ी दूरी पर पंद्रह-सोलह भिखारी औरत मर्द सब एक पंक्ति में बैठे भीख मांग रहे थे। मंदिर से दर्शन के बाद लौटते वक्त लोग उनके कटोरों में चिल्लर पैसे डाल रहे थे। मैंने ध्यान दिया तो पता चला कि वे सब अपने-अपने कटोरे में जमा पैसे लाइन में ही बैठे एक बुजुर्ग भिखारी को लेजाकर दे रहे थे। शायद वह उनका नेता था। बाद में सब आपस में बराबर-बराबर बाँट लेते होंगे। भिखारियों का भी आपस में इस तरह का यूनियन देख मुझे तसल्ली सी हुई।

म्यूजियम —

यहाँ की खुदाई से निकले बौद्ध धर्म से संबंधित अवशेषों का एक संग्रहालय है। बहुत सारे दुर्लभ कलेक्शन हैं। बौद्ध ग्रंथों से संबंधित अवशेष भी हैं, पर बिना गाईड के संग्रहालय में घूमना नीरस ही लगता है।

यहाँ पर एक हस्तकला केंद्र भी है। बौद्ध से संबंधित और स्थानीय लोगों द्वारा बनाये गये बहुत सारे कलेक्शन यहाँ पर बिक्री के लिये उपलब्ध हैं।

वावीलाल सुब्बाराव के घर में आतिथ्य—

वावीलाल सुब्बाराव एक रिटायर्ड प्रिंसिपल है। उन्होंने तेलुगु साहित्य में पी.एच.डी. किया है। साहित्य के प्रति गहन लगाव है। जब-तब हमारे शिविर में भी आते जाते रहते थे। और भी रिटायर्ड साथियों के साथ मिलकर उन्होंने एक संघ बनाया है जिसके द्वारा जब-तब वे सामाजिक कार्यक्रम करते रहते हैं। उन्होंने हमारे शिविर के तीसरे दिन संध्या के वक्त उन सब लोगों के साथ अपने घर पर एक सभा का आयोजन किया। सुब्बाराव को छोड़कर कोई भी साहित्य से नहीं जुड़ा हुआ था, पर साहित्यकारों के प्रति उनमें एक आदर भाव था। उनसे साहित्य के संबंध में प्रश्न पूछने को कहा गया तो वे कुछ नहीं पूछ पाये। हम लोगों ने कथा-साहित्य के संबंध में जनरल टॉपिक पर उनसे बातें की।

विदाई —

चौथा दिन हमारे शिविर का अंतिम दिन था। जिस प्रयोजन को लेकर शिविर का आयोजन किया गया था वह सफल रहा। साहित्यिक सभाओं में होने वाली जैसी न तो कोई हलचल थी और न कोई भाषण बाजी वगैरह। चुपचाप आये, चुपचाप अपना काम किया और चुपचाप ही चले गये।

उस धर्मशाला के प्लास्टर उचटे बेढंगे दीवार वाले कमरे जिसमें हमारा शिविर चलता था से हमारा एक तरह का अपनापन कायम हो चुका था। हम सबमें एक भावोद्वेग। एक तरफ यह जगह छोड़ने का तो दूसरी तरफ बिछुड़ने का।

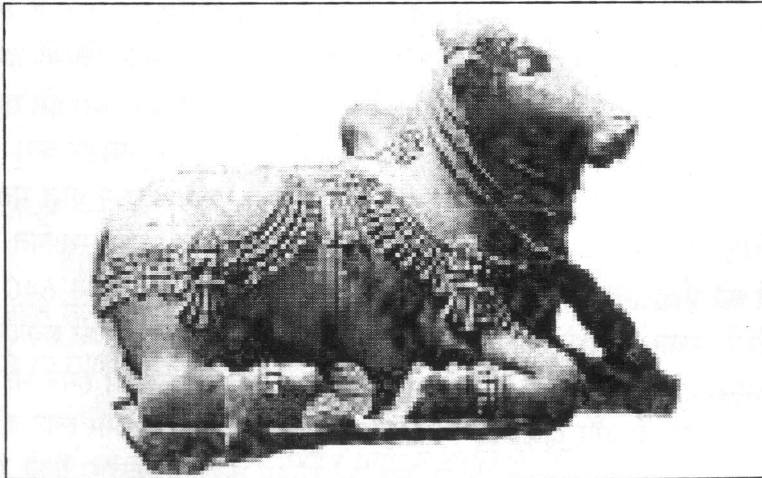
और अब हम लौट रहे थे उस स्थान से जहाँ गौतम बुद्ध ने बौद्ध मत से संबंधित दीक्षा संस्कार दिया था, जहाँ आचार्य नागार्जुन ने विहार स्थापित कर लोगों को बौद्ध मत की शिक्षा दी, जहाँ चीनी बौद्ध भिक्षुक ह्यूनसेंग ने 640 वीं ईसवीं में आकर अभिधममापीटिकम का अध्यायन किया था, जहाँ रहकर शंकरमंची ने 'अमरावती कथा' शीर्षक से कई अविस्मरणीय कहानियाँ लिखीं। हमने भी इस भूमि पर दीक्षा दी और दीक्षा ग्रहण की कथा साहित्य के बारे में, और लौट रहे थे अपने-अपने बसेरों की तरफ मन में कुछ कर गुजरने का दृढ़ विश्वास लिये हुए।

***

चित्रमय झलकियाँ



महानंदी मंदिर, रॉयलसीमा

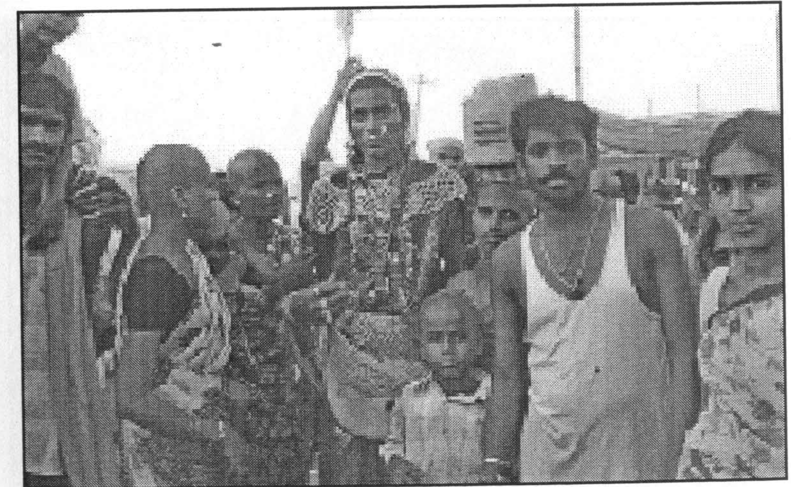


महानंदी

चित्रमय झलकियाँ



मेडारम मेले का एक दृश्य



मेडारम मेले में आये आदिवासियों का एक दृश्य

चित्रमय झलकियाँ



पुट्टपर्ती का एक दृश्य



पुट्टपर्ती का आगमन द्वार